उपवास के प्रयोग

नवीन और आधुनिक अनुसंधान

उपवास की उपयोगिता आवश्यकता और महत्ता के स[illegible]

शारीरिक और मानसिक उन्नति का वैज्ञानिक विधान

लेखक

केशवकुमार ठाकुर

प्रकाशक

विश्व-भारती पुस्तक माला, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण } अप्रैल १९३७ { सवा रुपया

प्रत्येक मनुष्य तभी तक जीवित है, जब तक उसके जीवन में प्रकृति का अनुसरण है।

× × ×

औषधियों के द्वारा, किसी रोग को अच्छा करने की चेष्टा करना, सम्पूर्ण शरीर को रोगी बनाना है।

× × ×

शरीर को नीरोग करने के लिए प्रकृति का अनुसरण ही सर्वोत्तम मार्ग है, उसमें आरोग्य करने की असीम शक्ति है।

× × ×

रोग-निवारण करने के लिए प्रकृति जो उपचार करती है, उपवास उसका मूल साधन है, उपवास के प्रयोग उस साधन की वैज्ञानिक क्रियायें हैं।

× × ×

जो उपवास और भूख को एक समझते हैं, उनको, इन दोनों के समझने का ज्ञान नहीं है। उपवास, शरीर की रचना का कार्य करता है और भूख के द्वारा शरीर का क्षय होता है। दोनों के अलग-अलग कार्य हैं—एक के द्वारा रचना का और दूसरे के द्वारा नाश का॥

× × ×

शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए उपवास प्राकृतिक साधन है, जो आग में तपे हुए सोने की भाँति, शरीर को निर्मल और पवित्र बना देता है॥

भूमिका

उपवास का विषय मेरे जीवन का एक प्रिय विषय है। इसके द्वारा मुझे स्वयं अनंत लाभ हुए हैं और बराबर होते रहते हैं। मैंने इस विषय पर पढ़ा है और अब भी पढ़ता रहता हूं।

जब कोई कवि अपनी कविता अपने लिए लिखता है तो उसकी वह कविता, उस कविता से, अधिक महत्त्व पूर्ण होती है, जो वह दूसरों के लिए लिखता है। लेखक की रचनायें दो प्रकार की होती हैं एक अपने लिए और दूसरी दूसरों के लिए। उपवास के प्रयोग, मैंने दूसरों के लिए नहीं अपने ही लिए किये हैं। इसके साथ-साथ यदि दूसरे भी लाभ उठा सकें तो अच्छा ही होगा।

हमारे देश और समाज में उपवास के विषय पर विद्वानों की अच्छी संख्या मिलेगी। परन्तु इस विषय पर हिन्दी में पुस्तकों का अभी पूर्ण अभाव है। अभी तक, उपवास चिकित्सा की एक पुस्तक हमारे सामने थी, जो बहुत पहले की लिखी हुई एक अंग्रेजी पुस्तक के आधार पर है। उसके पश्चात् अंग्रेजी में, अनेक उपयोगी पुस्तकें इस विषय पर लिखी गयी हैं जो विदेशों में प्रकाशित हुई हैं। इस पुस्तक को अपने अनुभवों के साथ साथ मैंने विद्वानों की लिखी हुई पुस्तकों के द्वारा उपयोगी और अप टु-डेट बनाने की चेष्टा की है और बहुत सावधानी से काम लिया है। यदि यह पुस्तक लोगों के लिए काम की सिद्ध हो सकी, तो मेरा अभिप्राय सार्थक हो सकेगा।

कमलिनी-प्रेस	विनीत—

२८ मार्च १९३७	केशव कुमार

विषय-सूची

उपवास के प्रयोग

१—उपवास का महत्व

More men have ruined themselves than have ever been destroyed by others more houses and cities have perished at the hands of man than storms or earthquakes have ever destroyed

जिस समय मैं अपने इन पत्रों में उपवास के महत्व लिखने बैठा, उस समय लिखने के पूर्व अंग्रेजी की उपरोक्त पंक्तियाँ याद आगयीं। इन पंक्तियों के लेखक का नाम स्मरण तो नहीं रहा किन्तु इनका स्मरण होते ही चित्त आनन्द से प्रसन्न हो उठा।

लेखक ने अपनी,इन पंक्तियों में हमारे जीवन का कितना ऊँचा भाव भरा है, इसका बताना कठिन है। वह कहता है—"मनुष्यों का विनाश दूसरों के द्वारा उतना अधिक नहीं होता जितना विनाश स्वय उनके ही द्वारा होता है। तूफानों और भूकम्पों के द्वारा घरों और नगरों की उतनी हानि नहीं हुई जितनी कि उनकी हानि मनुष्य के हाथों से हुई।"

इस पंक्ति में जीवन का बहुत ऊँचा तत्व भरा हुआ है। सचमुच यही बात है। सोचने और समझने के बाद आसानी के साथ, यह बात मालूम होती है कि हमारे जीवन की क्षति दूसरों के द्वारा उतनी नहीं होती जितनी कि क्षति हम स्वयं अपने लिए कर बैठते हैं। संसार में इस बात के उदाहरण कम मिलेंगे जिनसे यह प्रमाणित होता हो कि दूसरों से और शत्रुओं से अधिक विनाश होता है। बजाय इनके कि शत्रुओं की अपेक्षा हम स्वयं अपने लिए अधिक विनष्टकारी हैं।

जीवन की स्वाभाविकता

प्रो० फ., यह बात कितनी सत्य है कि हमारे घरों और शहरों का नाश तूफानों और भूकम्पों द्वारा उतना नहीं होता जितना कि हमारे द्वारा—मनुष्यों के द्वारा। इतिहास के पन्ने इस सत्य का समर्थन करते हैं। इसी सत्य के आधार पर यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि भोजन न पाने से उतने मनुष्यों की मृत्यु नहीं होती जितने अधिक मनुष्यों की मृत्यु भोजन पाने से होती है।

सहसा लोग कह बैठते हैं कि हजारों आदमी भूख के मारे मरे जा रहे हैं। लेकिन यदि पता लगाया जाय तो भूख से मरा हुआ एक भी न मिलेगा। किन्तु भोजन के द्वारा मरने वालों को हम रोज ही आँखों से देखते हैं। हमारी मृत्यु रोगों के कारण होती है और रोग भोजन के द्वारा पैदा होते हैं। इस बात को

अधिक विस्तार के साथ आगामी परिच्छेदों के पन्नों में लिखा जायगा।

हमारी इस बात से यदि कोई कह बैठे कि जब हमारी मृत्यु भोजन के द्वारा होती है तो फिर हम लोग भोजन करना क्यों नहीं बन्द कर देते। जब भोजन ही हमारी मृत्यु का कारण है तो उसके बन्द कर देने में क्या देर लगनी चाहिये, किसी का इस प्रकार कहना हमारी सच्चाई पर प्रकाश नहीं डालता। हमारे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि भोजन से हम लोग बीमार पड़ते हैं इसलिए हमें भोजन छोड़ देना चाहिए। जल से हमको जीवन प्राप्त होता है लेकिन इसके लिए यह कोई नहीं कह सकता कि अधिक से अधिक जल न हम लेते जिससे कि हमको अधिक जीवन प्राप्त हो। सूर्य की धूप हमारे शरीर को निर्विकार बनाती है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि तेज से तेज धूप में अधिक से अधिक समय तक उसकी उपयोगिता का हमें लाभ उठाना चाहिए।

अधिकता घातक होती है

बात यह है कि जिस प्रकार अधिक और अनावश्यक भोजन हमारे नाश के कारण होते हैं उसी प्रकार जल और सूर्य की धूप भी। भोजन के द्वारा हम जीवित रहते हैं लेकिन आवश्यकतानुसार ही भोजन पाकर। आवश्यकता से अधिक और विरुद्ध भोजन हमारे रोगों का कारण है। और रोग से ही हमारा विनाश होता है। इसमें सत्य यहाँ तक साथ देता है कि यदि भोजन न

किया जाय तो मनुष्य जीवित रह सकता है, कुछ समय तक। किन्तु अनावश्यक और विरुद्ध भोजन उतने ही समय में उसके नाश का कारण हो सकता है।

यहाँ पर एक छोटा सा उदाहरण याद आता है। पन्द्रह-सोलह वर्ष का एक लड़का बीमार था, दो सप्ताह से अधिक उसको बीमारी में हो चुके थे। वह देहात में रहता था। एक अच्छे वैद्य की दवा होरही थी। वैद्य जी ने रोग को घटते न देखकर उसको खाना देना बन्द कर रक्खा था। अनेक दिनों से ज्वर उतरा न था। इसी बीच में एक त्योहार पड़ा। उस त्योहार में घर में पूड़ी-कचौड़ी बनीं। सभी लोगों ने पेट भरकर भोजन किया लेकिन उस बीमार लड़के को कुछ खाने को न दिया गया। यह बात उसकी माता को असह्य मालूम हुई। उसने करुणा के भावों में सोचा, इतना बड़ा त्योहार और मेरा लड़का त्योहार न मना सका और त्योहार का भोजन भी न कर सका!

घर के सब लोगों के खा पी चुकने के बाद भी उस माँ ने खाना न खाया। एकान्त पाकर उससे न रहा गया। उसने उस बीमार लड़के से पूछा—बेटा कुछ खाओगे?

लड़के को जोर के साथ ज्वर चढ़ा हुआ था, सारा बदन आग हो रहा था। खुश्की के मारे उसका मुँह सूख रहा था। उत्सुक नेत्रों से उसने माँ की ओर देखा और कहा—वैद्य जी ने तो खाने को रोका है।

माँ ने कहा—हाँ, रोका है, लेकिन त्योहारका दिन है, जरा सा लेलो।

माँ से न रहा गया। उसने एक पूड़ी और शक्कर मिलाकर दही दे दिया। लड़के ने उसे खा लिया। दिन बीत गया। रात को लड़के की दशा में परिवर्तन होने लगा, उसने कुछ बकना आरम्भ कर दिया। रात ही को वैद्य जी का बुलाकर दिखाया गया तो मालूम हुआ कि उसका सन्निपात हो गया है। यह देखकर वैद्य जी को बहुत आश्चर्य हुआ। सन्निपात का कोई कारण उनको मालूम न हुआ। चौथे रोज उस लड़के की मृत्यु हो गयी।

यदि उस लड़के को आहार के लिए पूड़ी और दही न दिया जाता तो किसी भी प्रकार उसकी मृत्यु न होती। जिस ज्वर में वह लेटा हुआ था, उसमें उसे जो खाने को दिया गया, वह उसके लिए विष हो गया।

विकारों का शमन

यों तो हम जो भोजन करते हैं, उनसे हमको जीवन-शक्ति प्राप्त होती है किन्तु हमारे भोजनों से उनकी अपच अवस्था में जो विकार उत्पन्न होते हैं यदि उनका शमन और नाश न किया जाय तो वे विकार हमारे शरीर के लिए विष हो जाते हैं। ये विकार प्रायः पैदा होते रहते हैं। इन विकारों के शमन के लिए उपवास के प्रयोग किये जाते हैं। हमारे जीवन के लिए भोजनों का जितना अधिक महत्व है, उससे कम महत्व उपवास का नहीं है। भोजन के द्वारा हमको जीवन शक्ति प्राप्त होती है। भोजन में जहाँ यह एक गुण है, वहाँ उसमें दोष यह है कि उसके द्वारा हमारी अज्ञान अवस्था में विकार उत्पन्न होते रहते हैं। उपवास इन

विकारों का नाश करते रहते हैं। हमारे लिए जीवन शक्ति के प्राप्त करना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी है शरीर में उत्पन्न हुए विकारों का नाश करना। आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही उपवास के प्रयोग किये जाते हैं।

संसार के सभी देशों में और उनकी भिन्न-भिन्न जातियों में उपवास का महत्व प्राचीन काल से चला आरहा है। कोई भी ऐसा देश और जाति न मिलेगी, जिसमें इस महत्व के लाभ उठाने की व्यवस्था न हो। किन्तु प्राचीन काल के जीवन में और वर्तमान काल के जीवन में बड़ा अंतर हो गया है। और यह अन्तर दिन-पर-दिन अधिक होता जाता है। प्राचीन काल में उपवास के महत्व धार्मिक जीवन में मिलाये गए थे। और उनको अलग कोई रूप न देकर विभिन्न प्रकार के त्योहारों और उत्सवों का रूप दिया गया था। इन त्योहारों और उत्सवों में लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से उपवास करते थे और उससे लाभ उठाते थे।

वर्त्तमान युग प्राचीन काल से बहुत भिन्न होता जारहा है। उपवास का जो महत्व धार्मिक भावों में मिश्रित किया गया था, उसका सत्य और वास्तविक महत्व वर्त्तमान युग में लोगों के सामने आया। विज्ञान की इस बढ़ती हुई कला ने इस सत्य की खूब खोज की और विद्वान लोग इस नतीजे पर पहुँचे कि उपवास के द्वारा शरीर को नीरोग बनाया जा सकता है। इतना स्पष्ट हो जाने के बाद उपवास के सबन्ध में शरीर शास्त्र के विद्वानों ने और भी खोज की। इस प्रकार जितनी ही उसकी खोज होती

गयी, उतना ही उसका सीधा संबंध मनुष्य जाति के साथ जुड़ता गया। आज अवस्था यह है कि उच्च कोटि के शिक्षितों में सत्य का महत्व बढ़ता जाता है और इसी सत्य ने लोगों के निकट उपवास का महत्व बढ़ा दिया है। उपवास से हमारे शरीर का संबंध है, और वर्त्तमान युग के विद्वानों ने उसके प्रभाव को कितना उपयोगी साबित किया है, इसे अगले परिच्छेदों में हम लिखने की चेष्टा करेंगे।

२—प्रकृति स्वयं रोगों का नाश करती है

प्रजा जिस राजा के राज्य में रहती है, राज्य के नियमों को भंग करने पर वह दण्ड पाती है। यदि उस राज्य के नियमों के अनुसार उसकी प्रजा चलने की चेष्टा करे तो वह अधिक सुख से रह सकती है।

जीवन का यह बहुत मोटा सिद्धान्त है। जीव मात्र की उत्पत्ति, उसका पालन और पोषण, उसका जीवन और विनाश एक मात्र प्रकृति के ऊपर है। प्रकृति इस संसार की निर्माता है। वही इसकी संचालिका है। इस सृष्टि का शासन उसी प्रकृति के हाथ में है। जिस प्रकार प्रजा राजा के नियमों का उल्लंघन करने से दण्ड पाती है उसी प्रकार प्रकृति के नियमों को उल्लंघन करने से हम लोग अपराधी होते हैं। यह अपराध हमारी समझ में कुछ हो या न हो, हम उनको कुछ समझें या न समझें उनके संबंध में हमें कुछ ज्ञान हो या न हो, लेकिन उनका काम बराबर होता रहता है। जिस प्रकार बिना कानून के कोई राजा नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना नियमों के प्रकृति नहीं हो सकती। राजा के पास कानून है, प्रकृति के पास नियम है। हमको प्रकृति का ज्ञान हो या न हो, किन्तु प्रकृति अपना बराबर काम करती रहती है और उसके नियम बराबर हमारे जीवन में लागू रहते हैं। जहाँ हम उनके संबंध में भूल करते हैं वहीं हम कष्ट पाते हैं और जहाँ हम उनका अनुसरण करते हैं, वहीं हमको सुख मिलता है।

प्रकृति के नियमों का ज्ञान

प्रकृति के नियमों के सम्बन्ध में एक बात यहाँ जान लेना बहुत जरूरी है। उसने अपने नियमों की जानकारी के लिए स्वयं व्यवस्था कर रखी है और उसकी जानकारी के अस्तित्व प्रत्येक मनुष्य और जीव के शरीर में मौजूद हैं। जिस प्रकार हम जानते हैं कि चोरी करने से दण्ड मिलता है किसी का माल गायब करने से सजा मिलती है क्योंकि ऐसा राज-नियम है। राजा के इन कानूनों को सभी जानते हैं। परन्तु चारों ओर डाकुओं की संख्या बनी ही रहती है। लोग दण्ड पाते रहते हैं और चोरी जैसे बुरे काम होते ही रहते हैं। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि चोर ने चोरी इसलिए की कि उसको इस बात का ज्ञान न था कि चोरी करने से सजा मिलती है। सच्ची बात यह है कि इस बात का ज्ञान सभी को है कि चोरी करने से दण्ड मिलता है, किन्तु फिर भी लोग चोरी करते हैं।

प्रकृति के नियमों के सम्बन्ध में भी यही बात है। गरीब-अमीर शिक्षित-अशिक्षित, बालक-वृद्ध स्त्री-पुरुष आदि सभी को प्रकृति के नियमों का ज्ञान होता है। एक बालक चाहे वह कितनी ही छोटी उम्र का क्यों न हो प्रकृति के नियमों से अनजान नहीं होता। छः मास और चार मास का शिशु भी प्रकृति के नियमों का विरोध नहीं करना चाहता, जिस समय वह भूखा होता है, उस समय वह रोता है किन्तु आवश्यकतानुसार पीकर दूध बन्द

कर देता है। आवश्यकता से अधिक दूध पीने पर वह बीमार पड़ता है। मातायें इस बात को भलीभाँति समझती हैं कि भूखे बच्चे को जब वे दूध पिलाने बैठती हैं, उस समय वह शांत होकर दूध पीता है और जब उसका पेट भर जाता है तो वह दूध पीना बंद कर देता है। इसी प्रकार उससे बड़े बालक और सयाने आदमी भी प्रकृति के इन नियमों का ज्ञान रखते हैं। किंतु अनेक प्रकार के प्रलोभन और स्वार्थ मनुष्य जाति के इस ज्ञान को मेटियामेट कर देते हैं। प्रकृति ने अपने प्रभाव से ऐसी रचना की है कि उसके नियमों के विरोध में अरुचि उत्पन्न हो। जो बात प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करती है, उससे सहसा घृणा होना, उसके रुकावट के लिए इससे अधिक और क्या हो सकता है। प्रकृति की यह व्यवस्था उसकी सफलता की पराकाष्ठा है। परन्तु मनुष्य का जीवन इतना अस्त व्यस्त होगया है और प्रकृति से वह इतना भिन्न होगया है कि उसके नियमों को भंग करते समय उसके हृदय में कोई अधिक वेदना नहीं होती।

अन्य जीवों में प्रकृति के नियमों की जानकारी

प्रकृति के नियमों का यह ज्ञान न केवल मनुष्य मात्र को है, बल्कि अन्य जीवों को भी ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार मनुष्य को। पशुओं के सम्बंध में जिनको जानकारी है, वे जानते हैं कि जो उनके खाने के पदार्थ हैं, उन्हीं को वे खा सकते हैं। जो चीजें उनके खाने की नहीं हैं, उनको वे कभी न खायेंगे।

दूसरी बात यह है कि जितनी उनको भूख होगी, उतना ही वे खायेंगे। अधिक खाकर वे मनुष्यों की तरह बीमार न पड़ेंगे। इसका यह फल होता है कि मनुष्यों के सिवा अन्यान्य जीव पशु-पक्षी, जानवर आदि मनुष्यों की तरह बीमार नहीं पड़ते। और अधिक बीमार न पड़ने का कारण यह है कि वे प्रकृति के नियमों का उल्लंघन उतना नहीं करते हैं जितना कि मनुष्य करते हैं।

प्रकृति में रोग-निवारण की शक्ति

प्रकृति के नियमों का विरोध करने से और उनके प्रतिकूल चलने से रोगों की उत्पत्ति होती है किन्तु यदि विरुद्ध आचरण बंद कर दिये जॉय तो अपने आप उन रोगों का शमन भी होजाता है।

इसके उदाहरण में जैसे हमने अधिक खा लिया और उससे हमको अपच होगया, अपच हो जाने के कारण हमारे शरीर में अनेक व्याधियॉ उत्पन्न होंगी और उन व्याधियों से हमको कष्ट होगा लेकिन यदि हम, प्रकृति के नियमानुसार खाना बंद करदें तो जो व्याधियॉ उत्पन्न हुई हैं, वे अपने आप शान्त हो जॉयगी। मान लिया जाय कि अपच से पेट में दर्द पैदा हुआ और उसके बाद खाना बंद कर दिया गया तो धीरे-धीरे दर्द शान्त हो जायगा। और उस व्याधि का अंत हो जायगा। प्रकृति के कितने अच्छे नियम हैं और कितनी सुन्दर उनकी व्यवस्था है।

प्रकृति के इन नियमो और उसकी व्यवस्था को हम अन्य जीवों मे बहुत स्पष्ट देख सकते हैं। या तो कहने के लिए मनुष्य अधिक ज्ञानी माना जाता है लेकिन इस बात को मानना पड़ेगा कि मानव-जीवन अपनी अनेक बातों मे प्रकृति के बाहर हो गया है। पशु-पक्षी और जानवर प्रकृति के नियमों के अनुकूल जितने मिलते हैं, उतने हम लोग नहीं मिलते।

हम लोगो को पालतू पशुओं के सबध मे अधिक जानकारी है। हमको सबको इस बात का पता है कि जब हमारे पालतू पशु बीमार पड़ जाते हैं तो वे अपने आप खाना छोड़ देते हैं। उन्हें कोई बताने नहीं जाता और न उनको शिक्षा की ही आवश्यकता है जिसके द्वारा वे जानें कि हमें खाना छोड़ देना चाहिए। वास्तव में किसी भी प्रकार की शारीरिक व्याधि उत्पन्न होने पर वे अपने आप खाना छोड़ देते हैं। और कुछ समय के बाद वे फिर खाने लगते हैं।

मानव स्वभाव में प्रकृति का संकेत

मनुष्य के स्वभाव मे भी अपने नियमानुसार प्रकृति बराबर काम करती है। हम जब बीमार पड़ जाते हैं, जुकाम हो जाता है, ज्वर हो आता है अथवा अन्य किसी प्रकार की शारीरिक व्यथा उत्पन्न हो जाती है, उस समय हमको खाने की इच्छा नहीं रहती। इस बात को हम लोग भली प्रकार अनुभव कर सकते हैं कि तबीयत खराब होने पर अथवा बीमार हो जाने पर हम

भूख को अनुभव नहीं करते। हमारे जीवन में प्रकृति का यही संकेत है। यदि हम प्रकृति के इस संकेत की ओर उसकी आज्ञा का विरोध न करें और इच्छा न होने पर खाना न खायें तो जो शारीरिक व्यथा उत्पन्न हुई है वह धीरे-धीरे थोड़ी होने लगेगी और कुछ समय के बाद अपने आप नष्ट हो जायगी।

इस प्रकार के उदाहरणों से सिद्ध होता है कि प्रकृति में रोगों का निवारण करने की शक्ति है किन्तु उसी दशा में जिस दशा में हम उसके संकेत और आज्ञा पर चलें। परन्तु हमारा जीवन कुछ इस प्रकार का हो गया है कि हम प्रकृति के संकेत के अनुसार चल नहीं पाते।

वास्तव में हमारा जीवन बहुत दूषित हो गया है। बीमार होने पर हमको भूख नहीं लगती, इच्छा नहीं होती, भोजन से कुछ घृणा सी होती है, परन्तु घर के लोगों के मारे प्राण नहीं बचते, इनकार करने पर भी घर के लोग आग्रह करते हैं— कुछ खालो, थोड़ा-सा ही खालो। अमुक चीज न खाओ तो अमुक चीज खालो।" इस प्रकार के आग्रह के कारण प्रकृति का प्रतिबन्ध टूट जाता है। और टूट क्यों न जाय। उसका तो एक संकेत मात्र है, जिसके ज्ञान से हमको खाना न खाना चाहिए और वह संकेत इतना जोरदार होता है कि जिस रुचि के कारण हम भोजन करते हैं, उस रुचि और स्वाद को ही वह नष्ट कर देती है। किन्तु हमारे घरों के जो आग्रह शुरू होते हैं, उनके सामने बेचारी प्रकृति का क्या बस चल सकता है।

बूढ़े आदमियों के विश्वास

छोटे से लेकर बड़े तक, किसी भी प्रकार के रोग और शारीरिक व्यथा का प्रकृति नष्ट करती है। इसकी पुष्टि में पुराने आदमियों के विश्वास अब तक चले आ रहे हैं। वे किसी भी प्रकार की व्याधि में दवाओं का सेवन नहीं करते। सप्ताहके सप्ताह वे बीमार पड़े रहेंगे, किन्तु वे औषधि न खायेंगे। ऐसे लोगों को जिन्होंने देखा है, वे यह भी जानते हैं कि इस विश्वास के मनुष्य खाना भी छोड़ देते हैं। और जब तक उनका शरीर नीरोग नहीं हो जाता, तब तक वे खाना नहीं खाते।

उपवास की ये मोटी-मोटी बातें है जो शारीरिक रोगों और व्याधियों में जादू का सा प्रभाव डालती हैं। लेकिन उपवास के सम्बन्ध मे शरीर विज्ञान के पडितों ने जिस सत्य की छानबीन की है, उसको उन्होंने एक वैज्ञानिक रूप में मनुष्य-समाज के सामने रखा है। इस रूप मे आकर उपवास के प्रयोगों ने अपना अद्भुत चमत्कार दिखा रखा है। जिनके सबध मे आगे चलकर उनकी अलग-अलग बातों पर हम प्रकाश डालेंगे।

३—शरीर की बनावट और उसकी आवश्यकता

उपवास क्या चीज है उससे और शरीर में क्या सम्बन्ध है और उसका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है आदि बातों को जानने के पहले, यह आवश्यक है कि शरीर की बनावट और उसकी आवश्यकताओं का ज्ञान लिया जाय।

हमारा शरीर एक प्रकार का यन्त्र है। यन्त्र जिस प्रकार के काम करता है उसकी जो प्रकृति होती है वे सभी बातें हमको शरीर-यन्त्र में मिलेंगी। शरीर शास्त्र के विद्वानों ने शरीर-यन्त्र की तुलना रेलगाड़ी के इंजिन के साथ की है। उन्होंने बताया है कि अन्य यन्त्रों की अपेक्षा, शरीर-यन्त्र, रेलगाड़ी के इंजिन के साथ अधिक समता रखता है।

शरीर की मेशीनरी

रेलगाड़ी के इंजिन के लिए सभी जानते हैं कि कोयला और पानी की आवश्यकता होती है। इंजिन की यही खुराक है। यदि इंजिन को यह खुराक न दी जाये तो वह अपना काम न कर सकेगा। ठीक यही अवस्था हमारे शरीर-यन्त्र की है शरीर भी कुछ खाकर ही काम करता है। शरीर के खाने के पदार्थ, अनाज, फल, दूध, शाक, सब्जी, आदि और पीने के पदार्थों में जल है इन दो प्रकार के भोजनों के अतिरिक्त एक भोजन और है और वह है वायु।

हमारे शरीर को वायु की आवश्यकता इतनी अधिक है कि उसके सामने अन्य आवश्यकतायें मामूली हो जाती हैं। खाने को न मिले पीने को भी न मिले। लेकिन वायु के बिना किसी काम नहीं चल सकता। इस प्रकार वायु, भोजन और जल—ये तीन प्रकार के भोजनों को पाकर, हमारा शरीर-यन्त्र काम करता है।

भोजन की उपयोगिता

भोजन के नाम पर कुछ न कुछ खा लेना आवश्यक नहीं है। जिनको इन बातों का ज्ञान नहीं है, वे ऐसा कर सकते हैं, नहीं तो एक साधारण बात यह है कि भोजन जितना रुचिकर, पाचक और शक्तिवर्द्धक दिया जायगा, हमारे शरीर का उतना ही लाभ होगा। इस बात को और भी समझ लेने की जरूरत है। भोजन से शरीर को रस, रक्त और वीर्य की प्राप्ति होती है। जो भोजन हम खाते हैं, वह शरीर में जाकर अनेक प्रकार के यन्त्रों में पड़कर तैयार होने लगता है। भोज्य पदार्थों से रस, रक्त और वीर्य तैयार करने के लिए शरीर के भीतरी यन्त्रों को अपना बराबर काम करना पड़ता है कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं, जिनसे अपनी आवश्यकता के तत्व, सरलता पूर्वक यन्त्रों को मिल जाते हैं और कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं, जिनको पकाने और उनसे वे तत्व तैयार करने में बड़ी कठिनाई पड़ जाती है।

ऐसी अवस्था में, यह आवश्यक होता है कि हम उन्हीं भोजनों को अपना भोज्य बनायें, जो पाचक हों, शक्तिवर्द्धक हों

और जिनसे शारीरिक यन्त्रों को आसानी से आराम मिलता तथा प्राप्त हो जाता हो। ऐसा करने से हमारे भीतरी यन्त्रों को अधिक काम नहीं करना पड़ता और उपयोगी तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं।

सफाई और स्वच्छता

जिनको यन्त्र और मशीनरी का ज्ञान है वे जानते हैं कि किसी भी यन्त्र की सफाई और स्वच्छता की बड़ी आवश्यकता होती है। जो मशीनरी भीतर और बाहर—सब तरह साफ नहीं रखी जाती वह बहुत जल्द खराब हो जाती है। किसी भी यन्त्र के सम्बन्ध में यही बात है।

जो सिद्धान्त अन्य यन्त्रों के लिए है, वही शरीर के लिए भी पूर्ण रूप से लागू है। कुछ लोगों का ख्याल होता है कि सफाई खूबसूरती के लिए की जाती है, और जो लोग इस प्रकार का विचार रखते हैं, वे लोग शरीर को हमेशा साफ रखने की कोशिश नहीं करते। वे समझते हैं कि जब ज़रूरत होगी कर ली जायगी! ऐसा समझना मूर्खता है। उपवास के प्रयोग करने वालों को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि शरीर की भीतरी और बाहर सफाई की निरंतर आवश्यकता पड़ती है। जिनके शरीर में सफाई नहीं है, उनको समझ लेना चाहिए कि वे उपवास के प्रयोग से आसानी के साथ लाभ न उठा सकेंगे।

ऊपरी सफाई

सबसे पहले ऊपरी सफाई को समझ लेना चाहिए। नाक के द्वारा, कानों के द्वारा, आँखों के द्वारा, नाखूनों के द्वारा और रोम-

कूपों के द्वारा शरीर के भीतर का मल और विकार दूर होता रहता है।

यों तो मल और मूत्र निकालने के दो प्रमुख अंग होते हैं। किन्तु शरीर की ऊपरी सफाई से अधिक सम्बन्ध रोम छिद्रों का है। समस्त शरीर में छोटे-छोटे रोम छिद्र होते हैं और इन सूक्ष्म छिद्रों के द्वारा पसीने के रूप में शरीर का भीतरी मल निकलता रहता है। यदि यह मल निकलता न रहे और शरीर के भीतर उसे रुकने का अवसर मिले तो वह विष हो जाता है।

इसलिए शरीर का ऊपरी भाग इस प्रकार स्वच्छ और साफ रखना चाहिए, जिससे भीतरी मल के निकलने में किसी प्रकार की रुकावट न पड़े। विशेष रूप से शरीर के समस्त अंग नित्य एक बार इस प्रकार मल-मल कर धोना चाहिए, जिससे चर्म के ऊपर जमा हुआ मैल दूर हो जाय और रोम-छिद्र खुल जाँय। स्नान की व्यवस्था इसी उपयोगिता का समर्थन करती है।

भीतरी सफाई

शरीर की भीतरी सफाई बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। हम जो कुछ खाते और पीते हैं, उससे बहुत-सा अंश विकार और मल के रूप में निकलता है। भोजन के पदार्थों से इन विकृत अंशों के निकालने का काम, शरीर के भीतरी छोटे-बड़े यन्त्रों के द्वारा होता है। रस, रक्त और वीर्य बनाने का कार्य जो हमारे शरीर के भीतर निरन्तर हुआ करता है, उसी के साथ-साथ अनावश्यक अंश, विकृत भाग और मल पृथक होता रहता

है। इसको मल के नाम से पुकारा जाता है। यह मल अनेक रूप में तैयार होता है। और जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, यह शरीर के लिए बहुत घातक और विषपूर्ण होता है। यह शरीर के भीतर रुकने न पावे और निरन्तर बाहर होता रहे, यह बहुत आवश्यक है।

हमारे शरीर की रचना में एक बहुत बड़ी खूबी यह है कि इस विषैले मल को शरीर के भीतर से निकालने का काम शरीर के छोटे-बड़े अंगों के द्वारा स्वयं हुआ करता है। यह विशेषता मनुष्य-द्वारा निर्मित किसी यंत्र में नहीं मिल सकती। जिस प्रकृति ने हमारे शरीर की रचना की है उसकी सफलता और खूबी की यह सीमा है। परन्तु हमारा जीवन इतना अशुद्ध होगया है, जिससे हमारे शरीरके अंग-प्रत्यंग स्वाभाविक रूप से अपना काम नहीं कर पाते।

शरीर के भीतर जितने प्रकार का मल उत्पन्न होता है अथवा शरीर की आवश्यकता के विरुद्ध जो तत्व अथवा पदार्थ शरीर के भीतर प्रविष्ट कर जाते हैं उनको अंग्रेजी में फारेन मैटर कहा जाता है। यों तो इस फारेन मैटर के निकालने का काम हमारे शारीरिक अंग करते ही रहते हैं किन्तु हमारी संयमहीन जीवन-चर्या के कारण जब वे इस फारेन मैटर को शरीर के भीतर से नहीं निकाल पाते और इस फारेन मैटर को शरीर के भीतर रुकने का मौका मिलता है तो वहीं से शरीर में रोग की उत्पत्ति होती है। और जब तक यह एकत्रित मल अथवा फारेन मैटर शरीर से निकल नहीं जाता, तब तक शरीर में उत्पन्न हुआ रोग चाहे

यह किसी प्रकार की भी दवा से, कभी दूर नहीं हो सकता। शरीर-आरोग्य की प्रक्रिया को इस बात से अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और यह जान लेना चाहिए कि इस प्रकार विषाक्त मल को शरीर के भीतर से निकालने के लिए ही उपवास के प्रयोग किये जाते हैं।

४—रोगों की उत्पत्ति

रोग हमारे ऊपर किसी का अन्याय नहीं है। बल्कि हमारी भूलों और हमारे अपराधों का दण्ड स्वरूप है। जिस प्रकृति ने हमारी रचना की है, उसी प्रकृति ने अपनी रचना के कुछ नियम भी बना रखे हैं। जब हम उनका पालन नहीं करते तो हम दण्ड पाते हैं और इसी दण्ड का नाम है रोग।

—डा० जे० इन्गलस थामसन

रोगों के समझने में लोग बहुत बड़ी गलती करते हैं और इस गलती में थोड़े नहीं बहुत बड़ी संख्या में लोग सम्मिलित हैं। रोग क्या है, इस बात को यदि लोग समझ सकें तो वे कभी रोगी नहीं रह सकते।

प्राय लोग बीमार होने पर अपने पूर्व जन्मों का फल सोचा करते हैं। और साथ ही यह भी समझ लेते हैं कि हमें इन कष्टों का भोग करना ही पड़ेगा। इस विश्वास के अनुसार वे अपने आपको, अपने भाग्य को और कभी-कभी ईश्वर को कोसा करते हैं। उनका यह कोसना और इस प्रकार विश्राम करना एक बड़ी नासमझी से भरा हुआ है। इतनी बड़ी नासमझी कि जिसको सोचकर, उन लोगों की अज्ञानता पर तरस आता है।

रोग, अपराधों का दण्ड है

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, हम अपने खाने-पीने में, रहन-सहन मे और दैनिक जीवन चर्या में जब प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध चलते हैं, तो हम स्वयं अपने शरीर के साथ अत्याचार करते हैं। और उस प्रकृति के साथ अत्याचार करते हैं, जिसने हमारी और हमारे जीवन की रचना की है। यही हमारा अपराध है और इसी अपराध के फलस्वरूप हमको दण्ड मिलता है। जो दण्ड मिलता है, उसी का नाम है—रोग।

खाने पीने मे, रहन-सहन मे और आचार-विचार मे जो हम भूलें करते हैं, उनका तत्क्षण हमे दण्ड मिलता है। पूर्व जन्मों के अपराधों का दण्ड नहीं मिलता और इसलिए नहीं मिलता कि दण्ड देने वाली प्रकृति इतनी निबल नहीं है कि हम इस जन्म मे अपराध करें और साठ वर्षों के उपरान्त प्रकृति हमे उसका दण्ड दे। यह फिलासफी न तो सत्य है और न उस पर विश्वास करने की आवश्यकता है कि रोग हमारे पूर्व जन्मों के पापों का फल है।

हमको इस बात का विश्वास होना चाहिए कि प्रकृति में शक्ति है और उसी शक्ति से हमारे आजके अपराधों का दण्ड कल ही मिल जाता है। कभी-कभी तो हम प्रात अपराध करते और सायकाल को दण्ड पा जाते हैं। यही नहीं, प्राय इससे भी जल्दी हमको फल मिल जाता है। ऐसा देखा जाता है कि

सायंकाल किसी ने अस्वस्थता में अधिक भोजन कर लिया और रात को, [illegible] उसे बुखार हो आया। इस प्रकार हमारी भूलों का फल तुरन्त हमको मिलता है।

रोग उत्पन्न होने का क्रम

हमारी कई प्रकार की गलतियों के कारण ही हमारे शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। जिसने हमारे शरीर की रचना की है, वह नहीं चाहता कि उसकी रचना का यह प्यारा शरीर कभी नष्ट भ्रष्ट हो। उसने एक सुन्दर रचना की है और इस शरीर को सदा तन्दुरुस्त बनाये रखने के लिए सभी सम्भव व्यवस्था की है। शरीर रोगी न हो, इसके लिए उसने स्वयं प्रबन्ध कर रखा है। शरीर के विजातीय भाग जब कुछ अधिक एकत्र होने लगते हैं तो उनको निकालने में हमारा शरीर स्वयं ध्यान लगाता है।

रोग उत्पन्न होने के कारणों पर क्रमशः विचार करना यहाँ पर कुछ आवश्यक जान पड़ता है—

(१) जब खाना उस प्रकार की चीजों का खाया जाता है, जिनसे शरीर की पाचन-शक्तियाँ पचाने का काम नहीं कर पातीं तो वहीं से शरीर में विकार उत्पन्न होता है। और जब यह अवस्था क्रमशः चलती है जिसके फलस्वरूप खाया हुआ भोजन ठीक-ठीक पचने नहीं पाता तो खाने का जो भाग पेट में बिना पचे हुए रह जाता है वह रोग उत्पन्न करता है।

(२) मनुष्य जो खाना खाता है, उन खाद्य-पदार्थों से पेट के भीतर जो विकृत अंश रह जाते हैं, उनसे शरीर की सफाई

करने वाले अवयव शरीर से बाहर करते रहते हैं किन्तु जब उनका कुछ अंश रुक जाता है और उस रुके हुए अंश में रोज कुछ न कुछ वृद्धि होने लगती है तो रुका हुआ विकृत अंश सड़ कर जहर बनने लगता है और तरह-तरह के रोगों के उत्पन्न होने का कारण होता है।

(३) भूख से अधिक अन्न भोजन कर लिया जाता है तो पचाने का काम करने वाले छोटे-छोटे अंगों पर एक भारी बोझा पड़ जाता है और अधिक कार्य करने के कारण उनमें निर्बलता आजाती है, जिसके फलस्वरूप यदि दूसरे दिन हल्का भोजन न किया गया अथवा खाना न खाया गया तो पचानेवाले अंग पचाने का काम ठीक कर पाते, इससे रोग उत्पन्न होते हैं।

(४) शरीर के भीतर से अनेक मार्गों से मल मूत्र और विकार निकलते रहते हैं। यदि इस निकासी में अन्तर पड़ता है तो मनुष्य रोगी होता है।

(५) वायु मनुष्य के जीवन का सबसे अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण अंश है। लेकिन वही वायु जो शुद्ध और ताजी हो। जिस प्रकार शुद्ध वायु हमको जीवन देती है उसी प्रकार दूषित वायु हमारे भीतर घातक रोग उत्पन्न करती है

(६) नियमपूर्वक हमको सूर्य की धूप की आवश्यकता पड़ती है। जिनके शरीर को सूर्य की धूप नहीं मिला करती, उनके शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

(७) रोगी मनुष्यों के साथ शारीरिक सम्बन्ध होने के कारण रोग उत्पन्न होते हैं।

(८) रोगी माता-पिता के रोगों का विकार उसकी सन्तान में रोग उत्पन्न करता है।

इस प्रकार अनेक कारणों से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। जितने ऊपर कारण बताये गये हैं उन सबसे मालूम होता है कि शरीर के भीतर जब कभी मल या विजातीय द्रव्य रुकता है तो उसके रुकने से रोग उत्पन्न होते हैं। इस बात को यहाँ पर भली भाँति स्पष्ट कर देना है।

विजातीय द्रव्य का विषमय प्रभाव

शरीर में ऊपर बताये हुए किसी भी कारणों से जो दूषित अंश अथवा विकार इकट्ठा होता है, उसी को मल या विजातीय द्रव्य कहते हैं। समस्त रोगों का एक मात्र उद्गम विजातीय द्रव्य है। शरीर से इसका निकलना रोग का निवारण करना है। यदि मनुष्य को इस विजातीय द्रव्य के [illegible] कारी हो जाय तो वह अपने शरीर के रोगों [illegible]

ऊपर जैसा कि बताया जा चुका है और [illegible] एकत्रित मल के सम्बन्ध में भली प्रकार [illegible] यह मल, विजातीय द्रव्य जब शरीर [illegible] एक प्रकार की उत्ताप पैदा होता है। [illegible] गर्मी उत्पन्न हो जाने पर विजातीय [illegible]

शरीर के विभिन्न अंगों की तरफ अग्रसर होता है। यही उसका आक्रमण है। जिस समय उसमें गर्मी पैदा हो जाती है, उसी समय उसका विषमय प्रभाव काम करने लगता है। और अपना स्थान छोड़कर वह जिस अंग पर आक्रमण करता है, उसी अंग में घातक व्याधि उत्पन्न हो जाती है।

विजातीय द्रव्य के इस प्रकार और आक्रमण से जो व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हीं का मस्तक-पीड़ा, पेट में पीड़ा, ज्वर, जुकाम, फोड़ा, खाँसी, दाद खाज आदि-आदि रोगों के नाम से पुकारा जाता है। जितने भी रोग हो सकते है उन सब का यही एक मात्र कारण है। यदि विजातीय द्रव्य के विष का शमन किया जा सके, अर्थात शरीर के भीतर से विकृत मल को निकाला जा सके तो उसी से रोगों का शमन हो सकता है। इन विकारों को मिटाना और शरीर को नीरोग रखना, उपवास का उद्देश्य होता है।

५—रोग और उसका निवारण

यह बड़े दुख की बात है कि रोग और उसकी वास्तविकता को समझने वाले बहुत कम स्त्री-पुरुष मिलेंगे। फलतः यह है कि ऊटपटाँग के विचारों को लेकर लोग रोगी हो जाते हैं। जिन लोगों के पास पैसा होता है, वे चिकित्सा का प्रबन्ध करते हैं किन्तु जिनके पास पैसा नहीं होता, वे बेचारे रोगी बनकर दुख झेला करते हैं।

रोगों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार की भ्रान्तियाँ बनी हुई हैं, इसके सम्बन्ध में यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। यह बहुत साधारण बातें हैं। इसलिए उन पर अधिक प्रकाश डालना हमारी समझ में अधिक उपयोगी नहीं मालूम होता। अतएव जो बातें अत्यन्त साधारण और आवश्यक हैं, उनका साधारण स्पष्टीकरण करते हुए उन मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालना है, जिनके द्वारा मनुष्य-जीवन संकट में पड़ा हुआ है। निर्धन और अशिक्षित लोगों के मन में यही भ्रान्तियाँ रहती हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि भगवान ने जो कष्ट दिया है, उसका भोग किए बिना कोई कैसे बच सकता है। लोगों का यह भी विश्वास होता है कि रोग एक मियाद को लेकर आते हैं और जब उनका समय समाप्त हो जाता है तो वे अपने आप समाप्त हो जाते हैं। लोग कहा करते हैं कि जब उसे अच्छा होना होगा

सभी यह अच्छा होगा। चिकित्सा की जाय या न की जाय। लोगों की इन भ्रान्तियों का कारण उनकी अशिक्षा और उनका अज्ञान है।

वर्त्तमान चिकित्सा

रोगों की चिकित्सा करने के लिए जो साधन उपस्थित हैं वे हैं—वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों के द्वारा। शहरों में इन साधनों की कमी नहीं है। वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों की दूकानें स्थान स्थान पर दिखाई देती हैं। छोटे छोटे शहरों से लेकर, बड़े बड़े शहरों तक चिकित्सा करने वालों की भरमार छायी है।

चिकित्सा के इतने ही साधन शहरों में नहीं हैं। धनिकों की उदारता से और भी ऐसे साधन शहरों में मौजूद हैं, जिनसे साधारण लोगों की कठिनाइयों को सरल किया गया है अर्थात् प्रत्येक शहर में धर्मार्थ औषधालय और दातव्य चिकित्सालय खुले हुए हैं। इस प्रकार की चिकित्सा करने वाले बड़े बड़े सरकारी अस्पताल भी मौजूद हैं। इन सब साधनों के द्वारा शहरों में चिकित्सा की जाती है और कराई जाती है। जो शहर जितने ही बड़े हैं, वे साधन उतने ही अधिक वहाँ मौजूद हैं। परन्तु देहातों की दशा इससे भिन्न है। वहाँ वैद्यों और हकीमों की कमी है। यदि सौभाग्य से कहीं पर कोई है भी तो वह हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील की हैसियत से अपने परिश्रम का पुरस्कार लेता है।

जो कुछ हो वैद्य हकीम और डाक्टरों के द्वारा चिकित्सा का प्रबंध समाज में बहुत दिनों से चला आरहा है।

रोगों की वृद्धि

रोगों की चिकित्सा करने वालों की इतनी संख्या होने पर भी समाज रोगी है। देहातों में हकीम और वैद्य नहीं हैं यह कहा जा सकता है। किंतु शहरों के संबंध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। फिर समाज के रोगी होने का कारण क्या है? यह कहना भी अनुचित न होगा कि देहातों की अपेक्षा शहर अधिक रोगी हैं। यदि यह बात सही है तो इसके दो कारण हैं कि नीरोग रहने के लिए जिस प्रकार के जीवन की आवश्यकता है, शहरों में उसका बिलकुल अभाव है। और दूसरी बात यह है कि वर्तमान चिकित्सा-प्रणाली कुछ ऐसी दूषित है, जिससे रोगों की संख्या घटने के बजाय बढ़ रही है। यह बात देहातों की दशा को देख कर और भी कही जासकती है और यदि उस पर भली प्रकार विचार किया जाय तो कोई भी विचारशील आदमी इस बात को स्वीकार करेगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि लोग रोगी होते हैं, उनका इलाज भी होता है और वे रोगी भी बने रहते हैं। धर्मार्थ दवाखाने तो मेले की तरह भर रहते हैं। जो रोगी वहां चिकित्सा कराते हैं, वे उन औषधालयों के बराबर रोगी बने रहते हैं। शहरों की तो यह दशा हो गयी है कि लोगों के सुभीते के

लिए जितने ही चिकित्सालय खुलते जाते हैं, जनता के रोग दु
में उतने ही रोग बढ़ते जाते हैं। इसका कारण क्या है?

चिकित्सा या व्यापार

वर्त्तमान चिकित्सा-प्रणाली एक प्रकार का व्यापार है
चिकित्सक को उद्देश्य अपने व्यापार की दृष्टिकोण से रखकर
चिकित्सा करनी पड़ती है। यह ठीक है कि चिकित्सक, रोग
नाश करना चाहता है। किन्तु समाज रोगी न रहे इस बात
कोई भी वैद्य हकीम और डाक्टर न चाहेगा। केवल इतने
से इन व्यापारिक चिकित्सकों की मनोवृत्ति का पता चल सकता
है। क्या कोई अब कह सकता है कि जिस चिकित्सा का उद्देश
व्यापार है, उसका फल सिवा इसके कि समाज में रोगों की वृद्धि
हो, और क्या हो सकता है?

जो चिकित्सा समाज में बहुत पहले से चली आरही है
उसका रूप और उद्देश्य दिन प्रतिदिन व्यापारिक होता जाता है
यदि आज कोई सरकारी कानून इस प्रकार का बन जाय, जिसके
अनुसार चिकित्सक कोई भी रुपया न लेसकता है, न देसकता
है तो थोड़े ही दिनों में उसका यह फल होगा कि चिकित्सकों
की संख्या घट जायगी और चिकित्सा करने वालों की संख्या
के साथ साथ रोगियों की संख्या भी घट जायगी।

रोगों की वृद्धि और वर्त्तमान चिकित्सा

यहाँ पर इतना अधिक स्थान नहीं है जिसमें भली प्रकार
इस बात का प्रकाश डाला जासके कि समाज में रोगों की वृद्धि

का एक मात्र कारण, मौजूदा व्यापारिक चिकित्सा है। फिर भी, हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम यहाँ पर इस बात को स्पष्ट करें कि जो चिकित्सा रुपया के लिए की जाती है, उसके द्वारा समाज को नीरोग बनाने की भावना व्यर्थ है।

जो चिकित्सा हमारे समाज में मौजूद है, उसके संबंध में अधिक सोचने के बाद हमें कचहरी के वकीलों का स्मरण होता है। जब कोई आदमी किसी अपराध में अपराधी होजाता है तो वह अदालत के निर्णय के अनुसार दण्ड से बचने के लिए किसी वकील की शरण लेता है और उसका वह वकील एक लम्बी रकम लेकर उसको बचाने की चेष्टा करता है।

वकीलों की इस सहायता का यह फल नहीं होता कि अपराधी सजा से मुक्ति पाने के बाद भविष्य में उन अपकर्मों से सावधान रहता हो। होता यह है कि वकील अपराधियों को बचाते रहते हैं और अपराधी बराबर अपराध करते रहते हैं। डाक्टरों और वैद्यों के संबंध में भी यही बात है। लोग बीमार होते रहते हैं, चिकित्सक उनकी दवा करते रहते हैं। रोगी अच्छे होते हैं और फिर बीमार होते हैं। कितने ही वर्ष दवा में बिताने के बाद भी और सैकड़ों रुपये व्यय करने के पश्चात् भी रोगियों को इस बात का ज्ञान नहीं होता कि हमारे रोगों का कारण क्या है।

चिकित्सा की व्यापारिक मनोवृत्ति ने चिकित्सकों को पूर्णरूप से व्यापारिक बना डाला है। इस मनोवृत्ति और उद्देश्य के फल स्वरूप समाज कभी भी नीरोग नहीं हो सकता। उसको नीरोग

बनाए रखने का मार्ग है और वह यह है कि उस व्यापारिक चिकित्सा के प्रति लोगों का अविश्वास उत्पन्न हो।

सच्ची चिकित्सा के दो ही रूप हो सकते हैं। या तो लोगों को रोगों का ठीक-ठीक ज्ञान हो और उसके बाद प्राकृतिक नियमों से उनके रोगों का निवारण हो। और दूसरा यह कि रोगों के उत्पन्न होने पर स्वाभाविक रूप से उनको अच्छे होने दिया जाय। यदि समाज के सामने यही दो मार्ग रह जाँय तो समाज सरलतापूर्वक आरोग्य लाभ कर सकता है।

६—प्राचीन काल में उपवास

हमारे जीवन के साथ उपवास का क्या सबंध है? इस प्रश्न को वर्तमान युग का विज्ञान, समाज के सामने उत्तरोत्तर स्पष्ट करता जा रहा है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे पूर्वजों में उपवास का कोई ज्ञान न था।

इसके सबंध में यदि प्राचीन काल के जीवन का पता लगाया जाय तो बहुत सी बातें जानने को मिलती हैं। यद्यपि इस युग में और प्राचीन काल के युगों में बहुत अंतर होगया है और यह अंतर बराबर बढ़ता जारहा है, लेकिन जीवन का जहाँ तक सत्य से सबंध है, वह प्राचीन काल में भी था, इस काल में भी है और भविष्य काल में भी रहेगा। इतना अवश्य होता है कि उसके कहने-सुनने और समझने में अंतर पड़ जाता है। उसका बाह्य रूप बदल जाता है। उसका प्रमुख रूप, संक्षिप्त और विस्तृत हो जाता है, परन्तु वह रहता अवश्य है। सत्य की यही वास्तविकता है और यही उसकी व्यापकता है।

यही बात उपवास के सबंध में भी है। यह नहीं कोई कह सकता कि हमारे पूर्वजों में इसकी कोई जानकारी न थी अथवा प्राचीन काल में इसका कोई महत्व न था। जिनको प्राचीन काल के ग्रंथ पढ़ने को मिले हैं, वे जानते हैं कि उपवास जैसी महत्व-

पूर्ण बातों का ज्ञान प्राचीन-से प्राचीन काल में मौजूद था और वह बराबर ज़माने से चला आया है।

प्राचीन काल में उपवास का रूप

जैसा कि ऊपर लिखा है, समाज का वर्त्तमान काल, प्राचीन काल से भिन्न होगया है। यह भिन्नता न केवल हमारे देश में हुई है, किंतु संसार के सभी देशों में यह भिन्नता पायी जाती है। प्रत्येक देश और जाति का इतिहास बड़ी तेजी के साथ बदल रहा है और इस परिवर्तन में मानव समाज प्राचीन काल से हट कर जाने कहाँ-से कहाँ हो गया है।

प्राचीन काल के जीवन में उपवास का महत्व धार्मिक ग्रंथों में पाया जाता है। उन दिनों में समाज के शुभचिंतकों ने एक मात्र धर्म को ही महत्व दे रखा था और जितनी बातें उस ज़माने में हितकर और शुभचिंतना की होती थीं, उनको धार्मिकता के रंग में रंग दिया जाता था। उपवास के सम्बन्ध में भी यही हुआ था। यद्यपि आजकल के विज्ञान ने धर्म के साथ उपवास का कोई सम्बन्ध नहीं रखा, परन्तु प्राचीन काल में धर्म को पूर्णतया धार्मिक रूप दे दिया गया था। और इसीलिए उपवास की अधिक बातें उन्हीं जातियों के मनुष्य में पायी जाती थीं जो लोग धार्मिक मनोवृत्ति के होते थे।

धार्मिक लोगों में उपवास नित्य की दैनिक चर्या में परिणत हो गया था। लोग रविवार को सूर्य की उपासना कियाकरते थे। इसी

प्रकार भिन्न भिन्न देवताओं की पूजा-अर्चना के साथ, उपवास अनिवार्य हो गया था। ईश्वर-भक्त के लिए उपवास की आवश्यकता एक अनिवार्य आवश्यकता हो गयी थी।

यदि इन बातों की अधिक छानबीन की जाय तो इस निर्णय पर पहुँचा जासकता है कि देवताओं और ईश्वर की पूजा-आराधना का सम्बन्ध उपवास से कुछ भी नहीं है। शरीर-शासन के निमित्त उपवास का महत्व माना गया था और उस महत्व को ईश्वर पूजा में सम्मिलित कर लिया गया था। प्राचीन काल का जीवन धार्मिकता के रंग में रंगा हुआ है और उस रंग में उपवास का वही स्थान था जो स्थान दाल में नमक का होता है।

इस प्रकार उपवास हमारे प्राचीन काल में धार्मिकता में हिलमिल गया था। और जो लोग उपवास की साधना किया करते थे, वे लोग साधु और तपस्वी कहलाते थे। इसमें सन्देह नहीं कि इसको धार्मिकता का रूप देकर समाज में उपवास को महत्वपूर्ण माना गया था।

उपवास की व्यापकता

ऊपर की पंक्तियों में संक्षेप में यह बताया गया है कि उपवास मनुष्य-जीवन की धार्मिकता का एक अंग होगया था। किन्तु उससे भी अधिक उपवास को व्यापक बनाने की चेष्टा की गयी थी। प्रत्येक देश और जाति में त्योहार मनाये जाते हैं और उन त्योहारों में साधारण कोटि के स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकायें भाग लेती हैं। उपवास के पक्षपातियों ने, उपवास की सार्थकता

और व्यापकता के लिए त्योहारों के साथ उनका संबंध जोड़ा था, इस सूझ की जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी है। समाज में किसी बात की व्यापकता के लिए और उसके स्थायित्व के लिए इससे अच्छा साधन कदाचित नहीं मिल सकता। यदि हम अपने त्योहारों की ओर ध्यान दें और उनकी आलोचना करें तो हम समझ सकेंगे कि उनका अधिकांश भाग उपवास के महत्व से भरा हुआ है।

जातीयता की स्फूर्ति और धार्मिकता के भाव जागृत करने के लिए त्योहार हमारे जीवन में जादू का काम करते हैं। छोटे छोटे बालकों से लेकर साधारण और असाधारण स्त्री पुरुषों तक लोगों में अपने त्योहारों के लिए कितना गर्व और दुलार रहा होता! उपवास का उनके साथ संबंध जोड़कर, प्राचीन काल के उपवास-समर्थकों ने एक गजब का काम किया था जो उपवास को सर्वसाधारण में व्यापक बनाने में पूर्णरूप से सफल हुआ।

उपवास पर अन्य जातियों के पूर्वज

हिन्दू जाति की प्राचीन संस्कृति में जिस प्रकार उपवास का महत्व मिलता है, ठीक उसी प्रकार अन्य जातियों में भी हम उसका विकसित रूप पाते हैं और ठीक उसी प्रकार पाते हैं, जिस प्रकार हिन्दू-जाति में। ऊपर यह बताया जा चुका है कि प्राचीन काल, धर्म की प्रधानता का समय था। धर्म की यह प्रधानता न केवल हिन्दू-जाति में थी और न केवल भारतवर्ष में थी, बल्कि संसार की अन्य सभी जातियों में भी वह उसी प्रकार थी जिस

प्रकार किए जाते थे। उस ज़माने के इतिहास इस बात को स्पष्ट बताते हैं।

हिन्दुओं की भाँति मुसलमानों में भी अपने रोज़ा के लिए फकीरों का भार रहता था। और फकीरों की जीवन-चर्या में अनेक प्रकार से उपवास किया जाता था। मुस्लिम मज़हब में रोज़ा का बहुत बड़ा स्थान है। अरबी शब्द का अर्थ होता है— उपवास। यों तो खुदा की इबादत में मुसलमान रोज़े का महत्त्व देते ही थे, किन्तु इनका अन्य भी मनुष्य जाति के लिये उनके मज़हब में तरह तरह से ज्ञान पैदा करते थे। उनमें रमज़ान का एक महीना होता है जिसमें पूरे महीने भर प्रत्येक मुसलमान रोज़ा रखता है। इस महीने के रोज़े के दिनों में वे लोग सम्पूर्ण दिन निराहार रहते हैं और सूर्यास्त के पश्चात् वे लोग रोज़ा खोलते हैं।

मुस्लिम त्योहारों में भी इस रोज़े का बहुत महत्त्व है। मुहर्रम के दिनों में बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ मुसलमानों में रोज़ा मनाया जाता है और रोज़ा मनाना वे लोग खुदा की इबादत का काम समझते हैं। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक और स्त्रियों से लेकर पुरुषों तक—मुसलमानों में यह धार्मिक भावना आजतक जागृति के साथ काम करती चली आरही है।

ईसाइयों के धार्मिक जीवन में भी उपवास को पवित्र स्थान मिला है। ईसाई धर्म में जहाँ अन्य बातें बताई गयी हैं वहाँ उपवास का भी महत्त्व बताया गया है। उन लोगों में भी कुछ ऐसे

दिन होते हैं, जिनमे ईसाई पूर्णरूप से उपवास करते हैं और कु ऐसे त्योहार माने जाते हैं, जिनमें वे उपवास के खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं।

यह बातें तो हुईं, संसार की बड़ी बड़ी जातियों के सम्बन्ध में। कुछ ऐसी जातियाँ भी हैं जो इस सभ्यता के युग में समाज से पृथक हैं। उनमें न शिक्षा है और न जीवन का विकास है। परन्तु उनमें भी धर्म की अनेक प्रकार बातें मानी जाती हैं और उनकी धार्मिक बातों में उपवास को बहुत महत्त्व मिला है। वे उपवास को ईश्वर के निमित्त एक तपस्या समझते हैं और भिन्न भिन्न प्रकार से साधना किया करते हैं।

ऊपर की समस्त बातो की जड़ मे एक ही बात है और वह है, शरीर-शोधन के सबंध मे उपवास की प्रथा। वास्तव मे उपवास शरीर के विकारों का सशोधन करता है। इसके सिवा न तो उसका धर्म से कोई सबंध है और न ईश्वर की आराधना से।

७—भोजन उसके कार्य और परिणाम

उपवास के प्रयोग, प्राकृतिक चिकित्सा का प्रधान अंग है और प्राकृतिक चिकित्सा के पक्षपातियों को प्राकृतिक चिकित्सा की बातों के साथ-साथ, किंतु यथासभव उसके पूर्व भोजन सबधी बातो का जानना बहुत आवश्यक है। जब तक विकार के कारणों का ज्ञान नहीं होता, तब तक उसके निवारण की ठीक ठीक योग्यता नहीं आसकती।

हमारे जीवन का बहुत बड़ा मूल्य है, और यह मूल्य वहाँ पर व्यर्थ हो जाता है, जहाँ पर हमारा जीवन, सुख और आनद के स्थान पर दुखमय बन जाता है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि जीवन का सुख, आरोग्य जीवन पर निर्भर है और आरोग्य जीवन स्वास्थ्य सबधी बातों की जानकारी है। जिनको इन बातों का ज्ञान है—जो शरीर सबधी विज्ञान के पडित हैं, वही वास्तव में आरोग्य हैं और जीवन का सुख उन्हीं तक है।

अतएव जो लोग अपने शरीर को नीरोग बनाये रखना चाहते हैं और जो प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व से लाभ उठाना चाहते हैं, उनको सबसे पहले यह जानना चाहिए कि भोजन क्या है और उसके साथ हमारे शरीर का क्या सबध है ? इन बातों की जानकारी होने पर ही उससे ठीक-ठीक लाभ उठाया जासकता है।

भोजन की आवश्यकता

साधारण रूप से हम लोग यही समझते हैं कि भोजन के द्वारा हमारे शरीर में रक्त, मांस और वीर्य बनता है। इसके द्वारा शरीर को शक्ति तथा सामर्थ्य प्राप्त होती है। यह शक्ति और सामर्थ्य ही हमारे शरीर की, जीवन शक्ति और प्राण-शक्ति है।

डाक्टरों का मत इस जानकारी का समर्थन करता है। इस बात के स्मरण रखने की आवश्यकता है कि चिकित्सा के जितने मार्ग पाये जाते हैं, वे विशेष रूप से वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों से सम्बन्ध रखते हैं। इन सभी प्रकार की चिकित्साओं से प्राकृतिक चिकित्सा अनेक बातों में मतभेद रखती है। और यह मतभेद कहीं कहीं पर इतना विरुद्ध होजाता है जो दोनों के सिद्धान्तों को एक दूसरे से बहुत दूर कर देता है।

हाँ, तो डाक्टरों, वैद्यों, हकीमों के मत के अनुसार भी शरीर में भोजन के यही काम होते हैं। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञ जब भोजन के सूक्ष्म तत्वों की आलोचना करते हैं, वहीं पर वे बताते हैं कि भोजन के द्वारा शरीर में दो प्रकार के कोष (Cells) पैदा होते हैं। श्वेत और लाल। ये दोनों प्रकार के कोष ही हमारे जीवन-शक्ति हैं। इसके सिवा, भोजन का दूसरा कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

प्राकृतिक चिकित्सा और दूसरी चिकित्साओं में इस प्रकार का कुछ सूक्ष्म मतभेद अवश्य है। परन्तु प्रधान रूप से दोनों

के सिद्धान्त और उद्देश्य में अन्तर नहीं है। भोजन के द्वारा जो रूप तैयार होते हैं उनके सम्बन्ध में कुछ जान लेना यहाँ पर आवश्यक है। हम जो भोजन करते हैं वह हमारे शरीर के भीतर जाकर [illegible] बनता है। और इसमें [illegible] शरीर से [illegible] करते हैं उनके [illegible] रक्त, मांस की [illegible] का कारण है। [illegible] अशुद्ध [illegible] शक्ति प्राप्त होती है।

ऊपर जिन तत्त्वों की चर्चा की गयी है उन्हें हिन्दी में कोष के नाम से भी पुकारा जाता है। परन्तु हमारी समझ में इनका नाम कोष की अपेक्षा जीवन-तत्त्व अधिक उपयोगी और सार्थक है। इसलिए हम यहाँ पर इनको जीवन-तत्त्व के नाम से ही लिखेंगे।

ये तत्त्व जिनपर हमारा जीवन निर्भर है, इनके [illegible] बनते और नष्ट होते रहते हैं। हम जो कुछ भी करते हैं उसमें इन तत्त्वों का बराबर नाश होता है। और जो जीवन तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, उनके स्थान पर नवीन निर्मित तत्त्व आकर काम करने लगते हैं।

जीवन-तत्त्वों के निर्माण का कार्य

कुछ लोगों का मत है कि भोजन से रक्त और मांस तैयार होता है और रक्त तथा मांस से ये जीवन-तत्त्व बनते हैं। परन्तु

प्राकृतिक चिकित्सा का मत ऐसा नहीं है और न हमारा ही उस पर विश्वास है। प्राकृतिक चिकित्सा के मत से सीधे जीवन-तत्व तैयार होते हैं और तैयार होते हैं, प्रत्येक क्षण—प्रत्येक समय। यद्यपि हमारी इस पुस्तक के विषय से इस प्रसंग का विशेष संबंध नहीं है, किंतु हमारी समझ में इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है।

ऊपर हम बता चुके हैं कि कार्य करने में जीवन-तत्व नष्ट होते हैं। हम जो कुछ भी करते हैं, इन्हीं तत्वों के बल पर करते हैं और हमारे कार्य करने के द्वारा ये तत्व नष्ट होते रहते हैं। उठना-बैठना, चलना-फिरना, बात करना, अधिक बोलना, सोचना आदि-आदि कामों से लेकर परिश्रम के जितने भी कार्य हैं उनसे ये तत्व नष्ट होते रहते हैं। जो कार्य जितना ही परिश्रम लेते हैं, ये तत्व उनके द्वारा उतने ही अधिक नष्ट होते हैं। जब लगातार कुछ काम किया जाता है, तो उसके बाद जो थकावट अनुभव होती है, उसका यही कारण है कि जो तत्व शरीर में मौजूद थे, वे अधिक संख्या में नष्ट हो गये। ये संचित तत्व ही हमारी शारीरिक शक्ति के रूप में हैं। जब ये तत्व अधिक परिमाण में नष्ट हो जाते हैं तो दूसरे अर्थ में हम अपने शरीर की संचित शक्ति को खो बैठते हैं। इसलिए शरीर में अशक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस शक्तिहीनता के आने पर हमको विश्राम की आवश्यकता होती है। विश्राम से उपरोक्त तत्वों के नष्ट होने का काम बंद रहता है और उनके तैयार होने का काम जारी रहता है। लगातार कुछ देर

विश्राम कर लेने के पश्चात् हमारे शरीर में फिर शक्ति का जन्म होता है अर्थात नवीन तत्वों के तैयार हो जाने और एकत्रित हो जाने पर हममें फिर कार्य-शक्ति पैदा हो जाती है। हम जितनी ही देर विश्राम करेंगे, उतनी ही अधिक शक्ति हम प्राप्त होगा।

शरीर में भोजन की क्रिया

जब हम भोजन करते हैं उसकी क्रिया, भोजन के, मुंह में पहुँचते ही आरंभ होजाती है। मुंह में कौर आने ही दाँत पीसने का काम करने लगते हैं। और इस पिसाई में मुंह के अंदर जो लार उत्पन्न होती है, वह सहायता करती है। भोजन की क्रिया में इस लार का बहुत महत्व है। यदि हम लार का मिश्रण न हो तो पेट के भीतर जाकर भोजन के पदार्थों का पचना कठिन हो जाय।

मुँह के जबड़ों के नीचे दोनों बगलों में जो ग्रन्थियाँ होती हैं मुंह चलाने पर इन ग्रन्थियों से लार के रूप में पानी-सा निकलता है और यह पानी कौर में दाँतों के द्वारा पिसते समय मिश्रित होजाता है। यह लार जितनी ही अधिक कौर में मिश्रित होती है, उतना ही यह उसको अधिक पाचन-योग्य बनाती है। जो लोग देर तक कौर चबाया करते हैं, उनके भोजन में लार का मिश्रण अधिक होता है। और यह बात भोजन की पाचन-क्रिया के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसलिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कौर को जल्दी-जल्दी निगलने के बजाय देर

तक पचाना चाहिए। मुँह के नीचे अन्न मार्ग की एक नलिका होती है, उसी से होकर मुँह के आगे भोजन फिसलकर नीचे जाता है। इस नलिका में एक झिल्ली होती है, और वह झिल्ली एक प्रकार का रस देती है। उस रस से मिलकर भोजन का अंश नीचे उतरता है।

इस मार्ग से होकर अन्न आमाशय में पहुँचता है। यह आमाशय पसलियों से लेकर नाभि तक बना हुआ है। आमाशय में भोजन के पहुँचते ही एक प्रकार का खट्टा रस उत्पन्न होता है। उस रस के, अन्न में मिलते ही उसके पचने का कार्य आरंभ हो जाता है। आमाशय की बनावट मशक की-सी होती है और उसका दूसरा सिरा छोटी अँतड़ियों से मिला रहता है। जहाँ पर उसका सिरा अँतड़ियों से मिलता है, वहाँ पर मांस का एक ढक्कन रहता है और उस ढक्कन का काम यह है कि जब तक आमाशय में भोजन के पचन की क्रिया समाप्त नहीं हो जाती तब तक यह उसको अँतड़ियों में नहीं जाने देता।

इन छोटी अँतड़ियों में कई प्रकार के रस उत्पन्न होते हैं। उनके भीतर एक चिकनी झिल्ली होती है और रगें जाती हैं। ये रगें भोजन से बने हुए रस को चूसकर यकृत में पहुँचाती हैं। रगों के, रस खींच लेने पर मल आगे को खिसक जाता है और वह बड़ी आँतों में पहुँचकर गुदा के रास्ते से शरीर से बाहर होता है।

छोटी आँतें बड़ी आँतों से मिली रहती हैं। जब छोटी आँतों का काम समाप्त हो जाता है तो वह छोटी आँतों से बड़ी आँतों में

चला जाता है। इन आँतों मे एक प्रकार की गति होती रहती है। इस गति से आते सिकुडती और फैलती रहती हैं। और इसी के द्वारा मल आगे को खिसकता रहता है। आँतो की जब इस गति मे तेजी पैदा हो जाती है तो अतिसार का रोग उत्पन्न होता है और जब गति मन्द हो जाती है तो मलबद्धता की शिकायत हो जाती है।

शरीर के भीतर, विभिन्न प्रकार के मल

ऊपर भोजन की क्रिया का बताई गयी है उसमे, संक्षेप में यह स्पष्ट किया गया है कि भोजन के पदार्थ हमारे पेट में जो पहुँचते है, उनसे पाचन क्रिया के द्वारा रस उत्पन्न होता है। उस रस के निकाल लेने के बाद शेष मल के रूप मे बाहर होजाता है। भोजन से जो रस तैयार होता है उससे रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि अस्थि से मज्जा, और उसके बाद वीर्य बनता है। रस तैयार होने पर उसमे फिर पाचन क्रिया का काम आरंभ होता है और जब एक तत्व उससे तैयार होजाता है तो दूसरे तत्व के निर्माण का कार्य आरम्भ होजाता है। इसी प्रकार वीर्य तक प्रत्येक तत्व का निर्माण होता है। और प्रत्येक तत्व के निर्माण मे कुछ-न-कुछ मल निकलता है जो शरीर के विभिन्न अवयवो द्वारा पृथक होता रहता है।

इस प्रकार हमारे खाद्य पदार्थों से जो मल तैयार होता है, उसके विसर्जन का कार्य शरीर अपने आप किया करता है। इस क्रिया का क्रम बराबर जारी रहता है। यदि कभी उसमें

रुकावट आजाती है तो यह रुकावट अत्यन्त हानिकारक हो जाती है।

इस प्रकार खाने और पीने के द्वारा जो पदार्थ हमारे शरीर में प्रविष्ट करते हैं उनमें से आवश्यक अंश शरीर लेलेता है और शेष अंश छोड़ देता है जो मल के रूप में बाहर होता है। मल रूप में लोग इसी को मल समझा करते हैं, परन्तु इसके सिवा शरीर में और भी मल उत्पन्न होता है। उसमें हज़ारों प्रकार के कण काम किया करते हैं और उनका बराबर क्षय होता रहता है। क्षय हो जाने पर मल के रूप में वे पृथक् हो जाते हैं और उनके विसर्जन का कार्य भी शरीर को करना पड़ता है। इस तरह से अनेक प्रकार के विकृत अंश जो मल के रूप में शरीर से निकलते हैं, उनके विसर्जन के अनेक मार्ग हैं। शरीर के भीतर से लौटने वाली गन्दी वायु, पसीना, पाख़ाना, मूत्र, थूक और कफ, आँख, नाखून, बाल, मवाद, आदि हमारे शरीर के विभिन्न प्रकार के मल हैं। इस मल को शरीर से निकालने में हमारे भीतरी अवयव बराबर काम करते रहते हैं। जब कोई मल बाहर निकलने के बजाय भीतर ही रुक जाता है तो उसमें विष उत्पन्न हो जाता है और वह अनेक प्रकार के रोगों का कारण होता है।

८—रोग और अन्य चिकित्सायें

उपवास-चिकित्सा अथवा उपवास के प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सा का एक सरल और व्यापक सिद्धान्त है जो शरीर में रोग उत्पन्न करनेवाले मल अथवा विष के निष्कासन का काम करता है। उपवास के प्रयोगों का काम चमत्कार के लिए अब कोई नया काम नहीं रहा। शिक्षा के विकास के साथ-साथ शरीर-विज्ञान का महत्व बढ़ता जाता है और जितना ही यह महत्व बढ़ता जाता है उतना ही लोग उपवास के प्रयोगों पर विश्वास करते जाते हैं।

यह बात अब तक प्रसिद्ध हो चुकी है कि उपवास की क्रियाओं के द्वारा छोटे-से छोटे रोगों से लेकर भयंकर-से-भयंकर रोग मिटाये जाते हैं और यह भी मानने के लिए लोग विवश हुए हैं कि जिन रोगों के दूर करने में दूसरी चिकित्सायें असफल हुई हैं उन भयंकर रोगों को—जीर्ण तथा पुराने घातक रोगों को उपवास की क्रियाओं के द्वारा दूर किया जा सकता है। इतना सब होने पर भी आसानी के साथ लोग प्राकृतिक चिकित्सा अथवा उपवास की क्रियाओं के लाभ नहीं उठाते। उसका सब से प्रधान कारण यह है कि उपवास के प्रयोगों में अनेक प्रकार की कठिनाई उठानी पड़ती है। आयुर्वेदिक, डाक्टरी एवं हकीमी दवाओं में लोगों के सामने किसी प्रकार की संकट नहीं रहती।

[illegible] प्राकृतिक चिकित्सक [illegible] हैं और [illegible] चिकित्सा [illegible] हो जाता है। [illegible] बहुत [illegible] है। [illegible] कि [illegible] प्राकृतिक चिकित्सा की [illegible] हैं।

[illegible] से यही [illegible] कि [illegible] का भूख प्यास का कष्ट नहीं [illegible] पड़ता। [illegible] है कि डाक्टर लोग [illegible] की [illegible] नहीं करते इसलिए लोग इन मुसीबतों से भी बच जाते। और जहाँ पर डाक्टरों ने परहेज की कुछ बातें बताई भी, वहाँ लोग [illegible] कर देते हैं। किन्तु आराम से खाते पीते रहते हैं। उन ओषधियों के प्रयोग में भी किसी प्रकार का कष्ट और झंझट नहीं होता।

लाभ या सरलता

खाने-खाने ओषधियों का प्रयोग करने वालों के लिए प्राकृतिक चिकित्सा में अनेक प्रकार की कठिनाइयों को झेलना पड़ता है। जो लोग खाने-पीने के आदी होगये हैं उनको खाना रोकने में भी कष्ट होता है। इसके सिवा प्राकृतिक चिकित्सा के कुछ नियमों को काम में लाने में उन लोगों के सामने कठिनाई होती है जो लोग डाक्टरों की दी हुई शीशी को उठाकर पी लेते हैं और आराम से लेटे रहते हैं। फिर लोग प्राकृतिक चिकित्सा की

कठिनाइयों को क्यों झेलें ! रहा परिणाम सो तो बुरा होगा ही। यह तो स्पष्ट ही है कि अप्राकृतिक चिकित्सा द्वारा न तो रोग का निवारण हो सकता है और न शरीर आरोग्य बन सकता है। इसलिए यहाँ पर यह बहुत स्पष्ट बात है कि जो लोग प्राकृतिक चिकित्सा का अनुसरण करना चाहें वे सबसे पहले ओषधियों के मिथ्या उपचारों को समझ बूझ लें और उनसे अविश्वास करके प्राकृतिक नियमों पर अपनी श्रद्धा स्थापित करें।

रोग हमारे शत्रु नहीं हैं

यहाँ पर कुछ रोगों के सम्बन्ध में ओषधियों के प्रयोगों का फल दिखाना चाहते हैं। कदाचित् उनके परिणाम पढ़कर झूठे उपचारों पर विश्वास रखनेवालों के नेत्र खुल सकें।

रोगों के सम्बन्ध में जितना ओषधियों का प्रयोग किया जाता है, वे सब भी सब रोगों को दबाने का काम करती हैं। प्राकृतिक नियमों के अनुसार यह काम उलटा होता है। ऐसा मालूम होता है कि रोगों का अर्थ समझने में ही मतभेद है। पहली बात तो यह है कि रोग हमारे शत्रु नहीं हैं, मित्र होकर वे हमारे शरीर का भारी उपकार करने आते हैं। जब शरीर के भीतर मल संचित होने लगता है तो उसमें विष उत्पन्न होता है। प्रकृति के नियमों के अनुसार उस मल का निकालना आवश्यक है। यदि वह न निकाला गया और उससे विष की उत्पत्ति हुई तो वह मृत्यु का कारण होता है। इसलिए प्रकृति ने हमारे शरीर के भीतर ही ऐसी

व्यवस्था कर रखी है कि मल का सञ्चय न होने पावे। किन्तु फिर भी जब कुछ मल रुक जाता है और थोड़ा थोड़ा बराबर सञ्चित होता रहता है तब उसमें विष उत्पन्न होजाता है। इस विष के निकालने का यत्न भी प्रकृति ने कर रखा है और उस प्रकृति की ओर से ही रोग उत्पन्न होते हैं जो उन विषों के निकालने का प्रयत्न करते हैं। रोगों का यही एक मात्र कार्य है। प्रकृति के नियमों के अनुसार रोग उस विष के निकालने का प्रयत्न करते हैं और जब पूर्ण रूप से विष नष्ट होजाता है तो रोग अपने आप विनष्ट हो जाते हैं।

हमारे जीवन में कितनी उलटी बात है। प्रकृति ने हमारी रक्षा के लिए कितनी व्यवस्थायें कर रखी हैं। वह प्रत्येक भाँति हमारी रक्षा करती है और उस रक्षा के लिए जो कुछ उसे करना पड़ता है हम उसे शत्रु के रूप में देखा करते हैं।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि ओषधियाँ रोगों के दबाने का कार्य करती हैं। मान लीजिए किसी आदमी को जुकाम हो गया है, वह किसी वैद्य के पास जाता है और ऐसी दवा चाहता है कि जिससे उसका जुकाम हलका होजाय। वैद्य जी को तो पैसों से मतलब है। यदि वे कह दें कि हमारी ओषधि से तुम्हारा जुकाम बढ़ जायगा तो शायद ही वह रोगी वैद्य जी के पास फिर बैठ सके। वैद्य जी उस की बात को स्वीकार कर लेते हैं और ओषधि देकर उसके जुकाम को दबाने की चेष्टा करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि उस चेष्टा से जुकाम दब जायगा और रोगी प्रसन्न

हो जायगा। किंतु उनका पता तभी लगेगा जबकि उनको समझ लेने की आवश्यकता है।

पेट में संचित मल व विष को निकालने के लिए प्रकृति के नियमों के अनुसार उपवास पैदा हुआ था। उसका पहला उद्देश्य यह है कि जुकाम के मल को बाहर निकाल दिया जाय और उसके बाद उसका दूसरा उद्देश्य यह है कि नया मल पैदा होना रोक दिया जाय। ऊपर यह बताया जा चुका है कि खाने पीने के द्वारा हमारे शरीर में मल जमा होता है। ऐसी दशा में उपवास का अनिवार्य आवश्यकता है। इन दोनों बातों का फल यह होगा कि रोगी के पेट में संचित मल और विष आसानी से बाहर निकल जायगा और उसके पश्चात् रोगी का शरीर निर्मल और शुद्ध हो जायगा। शरीर के शुद्ध हो जाने पर जुकाम अपने आप गायब हो जायगा।

शरीर में विष उत्पन्न होने की सूचना

समझ में नहीं आता कि रोगों के प्रति शत्रुता का भाव उत्पन्न होने की भावना मनुष्य के मन में कैसे पैदा हुई। यदि हमारे घर में कुछ लोग आग लगाने आ रहे हैं और यदि इस बात की सूचना कोई भला आदमी आकर हमको दे तो वह हमारा शत्रु होगा या मित्र? यदि कुछ चोर हमारे घर में चोरी करने की बात सोच रहे हैं और उन चोरों की खबर कोई आदमी हमको देदेता है तो वह हमारा शुभचिंतक होगा या अशुभचिंतक? यदि हमारे घर में एक ऐसा आदमी आगया है जो हमको धोखे से

रूप देकर मार डालना चाहता है और कोई आदमी उसके पाप कर्मों की खबर आकर हमको देता है तो वह आदमी हमारे लिए भला हो सकता है या बुरा ? इन प्रश्नों के उत्तर में कोई भी आदमी इस प्रकार की खबर देने वालों को शुभचिंतक और मित्र ही कह सकता है। फिर रोगों के प्रति हमारे मन में शत्रुता का भाव कैसे उत्पन्न हो जाता है ? ऐसा मालूम होता है कि रोग के समझने में ही भूल होती है। वास्तव में रोग हमारे लिए अनिष्टकारी नहीं हैं। हमारे शरीर में जो विष उत्पन्न हो जाता है, उसकी सूचना देने के लिए प्रकृति की ओर से एक संकेत और संवाद हमको मिलता है और उसका अर्थ यह होता है कि हम सावधान हो जाँय। संकेत और संवाद देनेवाले का नाम है—रोग।

यदि हमको शरीर-विज्ञान का ज्ञान हो तो हमें इन रोगों का शुभचिंतक होना चाहिए और प्रकृति की इस व्यवस्था के लिए उसका अनुग्रह मानना चाहिए। बजाय इसके हम रोग उत्पन्न होते ही ईश्वर को कोसने लगते हैं। ये समस्त बातें अज्ञानता के सिवा और कुछ नहीं हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा के पक्षपातियों को मालूम होना चाहिए कि रोग, हमारे शरीर में विष उत्पन्न होने की सूचना देते हैं। एक तो यह, कि हम सावधान हो जाँय और अपने उन कामों को बन्द करें जिनसे शरीर में एकत्रित मल को विष तैयार करने में सहायता मिलती है। और दूसरे यह कि रोग, हमारे शरीर से विष निकालने का काम करते हैं।

शरीर से विष निकालने का कार्य

जैसा कि ऊपर लिखा है कि रोग शरीर से विष निकालने का कार्य करते हैं,इसको समझने के पहले,यह भलीभांति जान लेना आवश्यक है कि जो विष उत्पन्न होजाता है, उसमें वृद्धि कैसे होती है ?

पहले यह बताया जाचुका है कि कई प्रकार से हमारे शरीर के भीतर मल बना करता है। और शरीर उसके निकालने का कार्य भी किया करता है। यह मल विशेष रूप से हमारे खाद्य पदार्थों के साथ शरीर के भीतर पहुँचता है। उस मल के निकलने में जब रुकावट पड़ती है तो मल संचित होकर विष उत्पन्न करने लगता है।

जब शरीर में कुछ मल सञ्चित होजाता है तो हमारे शरीर के भीतर से मल निकालने वाले अंग-प्रत्यंग निर्बल होजाते हैं और वे अपना काम ठीक ठीक नहीं कर पाते। जिस प्रकार किसी मशीन के भीतरी पुरजों में जब मल बैठ जाता है तो वे पुरजे सरलतापूर्वक काम नहीं करते। उस दशा में मशीन का मालिक, मशीन के भीतरी पुरजों की सफाई कराने की चेष्टा करता है। समझदार मशीनमैन उन पुरजों की सफाई करके ही उस मशीन के चलाने का काम लेता है।

यदि वह ऐसा न करे और मशीन की सफाई किये बिना उससे बराबर काम लेता रहे तो मशीन कुछ दिनों में निकम्मी हो

जायगी। ठीक यही दशा हमारे शरीर की भी है। जब ... भीतरी पुरजों में मल रुक जाता है तो वे अपना काम क... साथ करने लगते हैं और यदि सचित मल की सफाई न की गया तो मल से सम्बध रखने वाले हमारे भीतरी पुरजे धीरे-धीरे निर्बल होने लगते हैं। उनके निर्बल होने पर मल के विसर्जन का कार्य और भी मन्द हो जाता है।

शरीर की जब यह दशा होती है तब वैद्य और डाक्टर उस काष्ठबद्धता या मन्दाग्नि के नाम से पुकारते हैं। यह काष्ठबद्धता शरीर के भीतर रुके हुए मल का परिणाम है। इस दशा में यह सचित मल विष के रूप में बदलने लगता है। इसी समय इस विष को निकालने के लिए रोग पैदा होते हैं। रोग का अकुर हात हो अथवा उसका आभास जान पड़ने पर सब से पहले खाना बन्द कर देना चाहिए। क्योंकि इस दशा मे मनुष्य जो कुछ खाता है और उससे जो मल तैयार होता है, उसके निकालने का कार्य ठीक-ठीक नहीं होता। जिसके कारण मल का परिमाण हमारे भीतर बढ़ता जाता है। इससे विष में वृद्धि होती जाती है और इसका फल यह होता है कि रोग को उस विष के निकालने में बहुत अधिक समय लग जाता है।

रोग की असाध्य अवस्था

पाठकों को हमारी बहुत-सी बातों से यह मालूम होगा कि रोग विष को निकालने का काम करते हैं और जब विष, पूर्ण रूप से निकल जाता है तो रोग अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

इसके बारे में कुछ पाठक पूछेंगे कि जो रोग असाध्य होजाते हैं और उपवास के बाद भी शरीर का पिण्ड नहीं छोड़ते, उसका कारण क्या है?

यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। क्योंकि बहुत से रोग ही नहीं बल्कि रोग, जीवन-भर के साथी होजाते हैं। उसका कारण है और कारण बहुत स्पष्ट है। ऊपर बताया गया है कि रोग उत्पन्न होने पर जब रोगी खाना बन्द नहीं करता तो शरीर के भीतर एकत्रित मल व मवाद प्रार में अधिक सहायता मिलता है। रोग एक तरफ से विष के निकालने का काम करता रहता है और दूसरी ओर शरीर के भीतर मल संचित होता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि विष उत्पन्न होने का काम बराबर जारी रहता है। न विष का कभी अन्त होता है और न रोग शरीर का पीछा छोड़ते हैं।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि रोग जिस परिमाण में विष के निकालने का काम करते हैं। उससे अधिक परिमाण में शरीर के भीतर विष उत्पन्न होने लगता है। इसका फल यह होता है कि रोग अपने कार्य में सफलता नहीं पाते। ऐसी दशा में लोग समझते हैं कि रोग बढ़ता जाता है। परन्तु ऐसी बात नहीं है। बात यह है कि विष का परिमाण शरीर में बढ़ता जाता है, जिससे रोगी का कष्ट उत्तरोत्तर अधिक होता जाता है।

वर्त्तमान चिकित्सा का कार्य

ऊपर रोगी की जिस दशा का वर्णन किया गया है, वह दशा शरीर में रोग उत्पन्न होने की है। अब इसके बाद समाज में प्रचलित वर्तमान चिकित्सा क्या काम करती है उसको भी थोड़ा सा समझ लेने की आवश्यकता है।

पहले भी यह बताया जा चुका है कि औषधियाँ रोगों को दबाने का काम करती हैं। शरीर में उनके दो प्रभाव पड़ते हैं। एक तो यह कि औषधियों के मादक द्रव्यों द्वारा शरीर में उभरा हुआ विष दब जाता है और कुछ दिनों तक दबा रहकर या तो वही रोग उत्पन्न हो जाता है अथवा उससे भी भयानक रोग पैदा कर देता है। दूसरा प्रभाव यह होता है कि शरीर में भीतर दवाओं के द्वारा एक विजातीय द्रव्य जाता है। पाठक ऊपर इस बात को पढ चुके हैं कि कोई भी विजातीय द्रव्य शरीर के लिए अहितकर ही साबित होगा।

प्राय लोगों ने देखा होगा कि रोगी अपने किसी रोग में जब किसी औषधि का प्रयोग करता है तो कुछ समय में वह अच्छा हो जाता है और उसके बाद वह फिर उभर आता है। कभी कभी यह देखा जाता है कि एक ही रोग अच्छा हो जाने पर भी अनेक बार फिर पैदा हो जाता है। इस बात से और भी स्पष्ट होता है कि औषधियाँ विष का नाश नहीं करतीं, बल्कि उसे दबा देती हैं। वह विष शरीर में मौजूद रहता है और संयोग पाकर फिर ज़ोर पकड़ता है।

प्राय रोगी देखे जाते हैं जो किसी घातक बीमारी से बीमार हो गये और दवा करने के बाद उनका वह रोग दब गया, परन्तु उसके बाद ही उसमे भी संगीन रोग पैदा हो गया। यदि शरीर में उत्पन्न हुआ विष शरीर से निकल जाता तो उसके पश्चात् किसी दूसरे घातक रोग के उत्पन्न होने की सम्भावना न थी। यह समस्त बातें स्पष्ट रूप से बताती हैं कि औषधियों के द्वारा शरीर नीरोग नहीं होता वरन् शरीर रोगों का घर बन जाता है।

लोगों ने देखा होगा जो लोग पैसेवाले होते हैं आसानी के साथ दवायें खरीद सकते हैं, वे प्राय रोगी बने रहते हैं। एक बार, दो बार रोगी हो जाने के बाद और किसी डाक्टर या वैद्य का सम्बन्ध हो जाने के पश्चात् फिर उनका चिकित्सा से और चिकित्सकों से सम्बन्ध बना ही रहता है। यह बात बहुत प्रसिद्ध है। और इतनी सत्य हो गयी है कि उसके आधार पर एक सिद्धान्त बन गया है कि जिनको भगवान पैसा देते हैं, वे सुख से खाने-पीने नहीं पाते। इस सिद्धान्त का अर्थ यही है। उनके खाने-पीने का मार्ग न तो भगवान रोकते हैं और न उनका भाग्य रोकता है। उनके खाने-पीने का सुख सौभाग्य नष्ट करनेवाली ये औषधियाँ हैं जिनके मादक विषों द्वारा शरीर का एक रोग दबता है और दूसरा पैदा होता है। यह क्रम बराबर काम करता रहता है।

ठीक इसके विरुद्ध निर्धनों और गरीबों में लोग देखते हैं कि वे अपनी निर्धनता के कारण औषधियों का सेवन नहीं कर पाते। फल यह होता है कि वे कुछ देर तक रोगी रहते हैं। किन्तु

अच्छे होजाने के बाद आराम लाभ करते हैं। यह निश्च सत्य है कि गरीब लोग अमीरों की भाँति रोगी नहीं रह इसके लिए कोई यह नहीं कह सकता कि अमीरों [illegible] और भग से अदावत होती है। इसलिए अमीर रोगी रहा करते हैं गरीबों से भगवान प्रसन्न रहते हैं, इसलिए वे रोगी कम करते हैं। सच्ची बात यह है कि औषधियों के प्रभाव से शर और भी रोगी होजाता है। ऐसी दशा में जो लोग सदा औषधि का ही सेवन करते रहते हैं, वे नीरोग किस प्रकार र सकते हैं।

औषधियों का विष

चिकित्सा के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात जानने की यह है कि हमारे शरीर के भीतर कोई भी द्रव्य न जाना चाहि सिवा इसके कि जो हमारे खाद्य पदार्थ हैं। हमारे खाने क चीजों में भी सम्पूर्ण भाग शरीर के लिए आवश्यक नहीं होता किन्तु उसका पृथक करण हमारी शक्ति के बाहर है। इस ल हम उनको खाने के काम में लाते हैं और उनके शरीर के भीत पहुँचने पर शरीर उनसे आवश्यक तत्त्व लेलेता है और शेष भा का मल के रूप में बाहर कर देता है।

यह बात न केवल औषधियों के सबंध में है, बल्कि किसी भी पदार्थ के संबंध में है। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु भी हमारे शरीर क भीतर न जानी चाहिए। इसलिए कि शरीर के लिए यह न केवल अनावश्यक है वरन् घातक है। इसलिए यदि कोई इस प्रकार

की वस्तु पहुँच जाती है तो शरीर के अवयव उसको तुरन्त निकालने की चेष्टा करते हैं। यदि उसके निकलने में किसी प्रकार की रुकावट पड़ी तो उससे भी एक विष ही उत्पन्न होगा, जिस प्रकार दूसरे मलों से उत्पन्न होता है।

अभिप्राय यह कि भोज्य पदार्थों के सिवा जो कुछ भी हमारे शरीर के भीतर जाता है, वह सब विजातीय द्रव्य अथवा फारेन मैटर कहलाता है। इस सिद्धान्त का कोई भी विरोध न कर सकेगा। ऐसी दशा में ओषधियों की उपयोगिता तो यहीं पर नष्ट हो जाती है और उनकी घातकता की कहानी आगे चलने लगती है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार की अधिक बातों से इस विषय को अधिक लम्बा किया जाय। संक्षेप में यहाँ पर जो बातें बतायी गयी हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ओषधियों के प्रयोग से रोगों का निराकरण नहीं होता, बल्कि शरीर सदा-सर्वदा के लिए रोगी बन जाता है।

९–रोगों की स्वाभाविकता और [illegible]

पिछले पृष्ठों में यह बताया गया है कि रोग क्या हैं औ वे क्या काम करते हैं। उसके आगे यहाँ पर हम य बताना चाहते हैं कि रोग उत्पन्न होने पर उनकी स्वाभाविकता क होती है उनकी माँग क्या है और समाज में उनके लिए क उपचार किए जाते हैं।

चिकित्सा का यह उद्देश्य है कि शरीर-विज्ञान की जानका के साथ रोगी को स्वाभाविकता का समझने की चेष्टा करे औ शरीर से विष निकालने के लिए उन प्रयत्नों को काम में ला जिनसे शरीर के आरोग्य होने में सहायता मिले, साथ ही उस समय से रोगी को शान्ति मालूम हो।

इसके सम्बन्ध में समाज की जो अवस्था है उसको देखक और समझ कर यदि यह कहा जाय कि औषधियों के संसार रोगों की स्वाभाविकता पर उलटा प्रभाव डाल रखा है तो अनुचि न होगा। इस बात को स्पष्ट रूप में समझने के लिए यहाँ प एक नहीं, अनेक ऐसे उदाहरण दिये जायँगे, जिनसे रोगों की स्वाभाविकता का पता चलेगा और यह मालूम होगा कि उनके संबंध में जो ऊपरी उपचार किये जाते हैं, वे कितने उलटे हैं जिनसे लाभ होने की बात तो पीछे है, रोगी को शान्ति के स्थान पर कितने बड़े कष्ट का अनुभव होता है।

हमें दुख के साथ कहना पड़ता है कि अशिक्षा के कारण एक तो समाज यों ही अंधकार में है, दूसरे वैद्यों और डाक्टरों ने लोगों में जो विचार भर रखे हैं, वे केवल कष्ट के बढ़ाने वाले हैं, इस प्रकार की परिस्थितियाँ यह कहने के लिए मजबूर करती हैं कि वर्तमान ओषधि-व्यापारियों ने लोगों को प्रकाश की ओर खींचने के बजाय अंधकार की ओर खींचने का प्रयत्न किया है।

रोगी को भोजन

रोगों के सम्बन्ध में इस पुस्तक में जो बातें बतायी गयी हैं, उनसे यह साफ मालूम होता है, कि खाद्य पदार्थों से बने हुए मल और उसके संचित होने के कारण रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए उनके प्रतिकार में भोजन का रोकना आवश्यक होता है। विशेष कर ज्वर, जुकाम, अथवा इनसे सम्बन्ध रखने वाले रोगों में इस बात की सचाई में कितने स्पष्ट कारण हैं जिनसे कोई भी समझ सकता है। भोजन देना बंद कर देना चाहिए, इसके लिए प्रकृति का संकेत इस प्रकार समझा जा सकता है कि बुखार, जुकाम आदि जैसे रोगों के आरम्भ होते ही रोगी को भूख नहीं लगती, खाने की इच्छा नहीं होती। भोजन की सभी चीजों के प्रति उसके अरुचि उत्पन्न हो जाती है। स्वादिष्ट-से-स्वादिष्ट पदार्थ भी अस्वादिष्ट मालूम होते हैं। यही स्वाभाविकता है। प्रकृति का यही संकेत है। यही उसकी आज्ञा है और यही उसकी व्यवस्था है।

अब रोगियों और रोगियों का इलाज करने वालों का रु
देखिए। रोगी महाराय डाक्टर साहब के पास पहुँचे। देखन
डाक्टर साहब ने इशारा किया कहिए क्या बात है ?

रोगी ने कहा—डाक्टर साहब आज दो-तीन रोज
बुखार आता है, सिर में दर्द है जाड़ा मालूम होता है। रात क
नींद नहीं आती।

डाक्टर साहब ने एक-आ बात पूछकर नुसखा लिखा आ
रोगी को देखा। रोगी ने पूछा—डाक्टर साहब खाने के लि
डाक्टर साहब—दूध और साबूदाना लना।

रोगी, शीशी में दवा लेकर चला आया। बुखार चढ़ा हुआ
है, भूख बिलकुल नहीं है। दो दिन से पाखाना नहीं हो रहा
लेकिन साबूदाना तैयार किया। रोगी ने डटकर खाया। डटकर
क्यों न खाय, अरहर की दाल और गेहूँ की मूसी रोटिया से
दूध में बना हुआ साबूदाना कहीं अच्छी चीज है। फिर पेट
भर क्यों न खाया जाय। अच्छा लगे या न लगे। भूख हो या
न हो। इन सब बातों को कौन देखता है। प्रकृति के नियमों का
कितना भयंकर उल्लंघन होता है। रोगी साबूदाना खाता जाता
है और कहता जाता है—साबूदाना खाने में अच्छा नहीं मालूम
हो रहा।

कितनी सीधी सी बात है। रोगी की अवस्था को देखकर
भोजन बंद करना कितना आवश्यक था, परन्तु डाक्टर साहब
का दूध और साबूदाना चल रहा है। यदि कहीं वैद्य जी से काम

-ता में दूध और साग-भाजी के स्थान पर मूंग की दाल और ,री चलती है। इसका फल यह होता है कि प्राय: रोगियों के हो जाता है। इसलिए कि खाने की चीजें मुंह के नीचे उन र जिस आमाशय में पहुँचती हैं उनको लेने के लिए आमाशय तैयार नहीं है। इसके फलस्वरूप ... होती है। भोजन को रोकने लिए प्रकृति की ओर से यह दूसरा कड़ा प्रतिबंध है।

गर्मी और उत्ताप की वृद्धि में

जिन बीमारियों में शरीर गर्म हो जाता है और गर्मी तथा ताप की वृद्धि कभी-कभी इतनी अधिक हो जाती है कि शरीर आग की तरह जलने लगता है, उस दशा में रोगी बहुत बेचैन होता है। उत्ताप की अधिकता में बीमार की व्याकुलता बढ़ती है और वह किसी प्रकार उसके शांति करने की बात सोचता है। बहुत मामूली बात है कि इस प्रकार बढ़ती हुई गर्मी और जलन में बीमार पानी पीने को माँगता है, उसको स्वच्छ और शीतल जल देने के स्थान पर गर्म कर औटा हुआ पानी दिया जाता है। लोगों का यह भी विश्वास है कि ज्वर में अधिक पानी पीना अच्छा नहीं होता। जहाँ तक प्रकृति का सम्बंध है, वहाँ तक यह बात उलटी मालूम होती है। गर्मी के बढ़ने पर प्यास का लगना स्वाभाविक है। और प्यास शीतल तथा स्वच्छ जल पाकर ही शांत होती है। जिसके लिए गरम जल या गरम दूध दिया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा के मत के अनुसार यह बात न केवल अहितकर है बल्कि बीमार के लिए व्याकुलता की वृद्धि करने-

जाती है। ऐसी दशा में प्रकृति शीतल जल या ० चाहती है।

बीमार के लिए शुद्ध वायु और प्रकाश

शुद्ध वायु और प्रकाश रोगों का शमन करता है विष दमन करता है। रोगाणुओं का नाश करता है और रोगी शान्ति देकर नीरोग बनाता है। लेकिन वर्तमान ओषधि विज्ञा के पंडित इसको आवश्यक नहीं समझते। देखा जाता है कि कोई बीमार कुछ अधिक रोगी हो जाता है तो उसको वायु और प्रकाश से बचाकर रखा जाता है। वैद्य लोग तो बराबर इस बात को कहा ही करते हैं कि हवा न लगने पावे। उनकी इस आज्ञा के अनुकूल बीमार को रखने की चेष्टा की जाती है।

इन भ्रान्तियों का यह फल होता है कि बीमार घर के उस भाग मे रखा जाता है, जहाँ वायु नहीं पहुँचती। प्रकाश भी बहुत कम होता है। इस पर भी वायु और प्रकाश के आने के मार्ग में मोटे-मोटे कपड़ों के ऐसे संगीन पर्दे डाले जाते हैं, जिससे रोगी के लेटने का स्थान वायु और प्रकाश से बिलकुल अलग होजाता है।

इस दशा में बीमार की तबीयत घबराती है। वायुहीन स्थान गर्म हो उठता है। एक ओर बुखार की वह गर्मी, जलता हुआ शरीर, दूसरे यह बंद स्थान। बीमार अपने कष्ट को स्वयं ही जानता है। इसपर भी एक और बुद्धिमानी से काम लिया जाता

है और वह यह कि मोटी-मोटी दवाइयाँ डालकर मरीज के प्राण संकट में डाल दिये जाते हैं।

ये सभी उपचार प्रकृति के विरुद्ध हैं। शुद्ध वायु मिलने से रोगी को बहुत शान्ति मिलती है। जलते हुए अंग में ताज़ा वायु का स्पर्श होने से उत्ताप क्षीण होता है। लेकिन जिन लोगों की बुद्धिमानी से ये व्यवस्थायें की जाती हैं, उनका विज्ञान समझ में नहीं आता।

भला इसके क्या अर्थ कि रोगी जिस समय ज्वर की आग में भुन रहा है, गर्मी के मारे गला सूखा जाता है, जलन इतनी अधिक है कि रह-रहकर प्राण ऊबते हैं, शरीर पर पतला वस्त्र भी सहन नहीं होता, किन्तु उसका सहन करने वाले मानो दवाइयों से उसको ढकने की चेष्टा करते हैं। कितना भयङ्कर समय होता है! शरीर में जलती हुई आग भीषण तृषा! इन कष्टों का नाश करने वाले उपचारों का अभाव! न पीने को शीतल जल, न शुद्ध वायु का स्पर्श, न आरोग्य देने वाला प्रकाश। वास्तव में बीमार के आरोग्य करने का नहीं, मारने का सामान इकट्ठा किया जाता है।

यहाँ पर समझ लेना चाहिए कि शरीर के भीतर जो विष पैदा हो गया है, वह विष उत्ताप के रूप में प्रकट होता है। प्रकृति इस विष को त्वचा के मार्ग से निकालने की चेष्टा करती है, परन्तु दुर्भाग्य से औषधियों के विधाता उत्ताप के रूप में विष को निकलने नहीं देना चाहते। उस समय की स्थिति का जब स्मरण

आता है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं और बीमार की दशा पर आता है। वास्तव में चाहिए यह कि रोगी को प्यास में शुद्ध शीतल जल दिया जाय। प्रकाश और शुद्धवायु मिलने के विशेष रूप से व्यवस्था की जाय। यदि ऐसा किया जाय तड़पता हुआ रोगी तीस मिनट के भीतर शान्ति अनुभव करे उसके चेहरे पर विश्राम के भाव दिखाई देंगे। बीमार को मा होगा, जैसे उसका रोग घटकर आधा रह गया।

सिर की पीड़ा के समय

अन्य उपचारों की भाँति सिर की पीड़ा के लिए भी इसी प्रकार का उपचार किया जाता है। यदि किसी के सिर पीड़ा पैदा हो गयी है, जिससे दुखी होकर पीड़ाग्रस्त व्य किसी वैद्य या डाक्टर के पास जाता है और दवा लेकर सि की पीड़ा अच्छा करना चाहता है। डाक्टर और वैद्य भी ऐ दवाओं का प्रबन्ध करते हैं, जिनसे पीड़ा शान्त हो जाय।

इसके लिए सिर में मलने के लिए तेल दिये जाते हैं औ इस बात की आशा की जाती है कि सिर की पीड़ा जाती रहेगी डाक्टरों के पास इसके लिए एक अंग्रेजी टिकिया होती है, जिसे खालेने के पश्चात् कुछ देर में पीड़ा जाती रहती है।

यह सब बातें होती हैं। परन्तु इनका परिणाम क्या होता है इसके भी समझने की आवश्यकता है। हम यह नहीं कहते कि इन उपचारों से सिर की पीड़ा का नाश नहीं होता। नाश होत

किन्तु कुछ समय के लिए। उसका कारण यह है कि मिर की पीड़ा तो शरीर के भीतर उत्पन्न हुए विष का सूचना देती है। मस्तक-पीड़ा स्वयं कोई पृथक रोग के रूप में नहीं है। सत्य यह है। इसके लिए मामूली औषधियों के प्रभाव से उसको दबाने की चेष्टा की जाती है। उसके दो प्रभाव होंगे। पहला यह कि मस्तक पीड़ा कुछ समय के लिए शान्त हो जायगी और उसके बाद फिर पैदा हो जायगी। और दूसरा यह कि यदि औषधियों ने उसको बिल्कुल ही दबा दिया तो शरीर के भीतर उपस्थित विष किसी दूसरे रोग के उत्पन्न होजाने का कारण होगा और शरीर की दशा पहले की अपेक्षा अधिक भयानक हो जायगी।

इसीलिए प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त है कि किसी भी रोग को दबाया न जाय। शरीर में उसके अस्तित्व का नाश किया जाय। इसके सिवा शरीर को वास्तव में आरोग्य बनाने के लिए दूसरा कोई भी साधन नहीं हो सकता।

१०—प्राकृतिक चिकित्सा का मूल मतभेद

वर्तमान चिकित्सा व्यवसाइयों के साथ, प्राकृतिक चिकित्सा का मतभेद है। यह मतभेद बहुत गहरा है और चिकित्सा की जड़ से लेकर, रोग के मूल से लेकर, अंत तक—सिद्धान्त और कार्य तक में बराबर मतभेद है, जैसा कि हमने इसके पहले स्थान-स्थान पर स्पष्ट करने की कोशिश की है।

समाज में जो चिकित्सायें फैली हुई हैं, वे बहुत समय से चली आरही हैं यद्यपि उनमें अँगरेजी औषधि-विज्ञान में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं और अंग्रेजी औषधियों ने अपने ही मार्ग में, अपने ही सिद्धान्त पर एक गंभीर उन्नति की है, किन्तु वैद्यक और हकीमी ने पूर्ण अंशों में प्राचीनता के रोग का ही समर्थन किया है। अंतर यह अवश्य हुआ है कि समय जितना ही आगे बढ़ता गया, प्राचीन बातों के महत्व और मार्ग भी उतने ही गिरते गये।

जहाँ अँगरेजी डाक्टरों ने नित नई खोज करने और अपनी चिकित्सा में एक नवीन लहर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है वहाँ हमारे वैद्यों और हकीमों ने अपने पूर्वजों की कीर्ति का आश्रय लेना ही पर्याप्त समझा है। आयुर्वेद चिकित्सा का नवीन रूप से कुछ खोज नहीं हुआ इस प्रकार की बातों का फल यह होता है कि जो अनुमान हुए थे, वे आज मरखा बरस के बाद कुछ

अंश में अनुपयोगी हो गये और दूसरा यह प्रभाव भी पड़ा कि इतने अधिक समय के बाद उन अनुसंधानों के सूक्ष्म रूप नष्ट हो गये।

यह तो हुआ, उनके सिद्धान्तों, अनुसंधानों और उद्देश्यों का रूप, परन्तु उनके कार्य प्राकृतिक व्यवस्था से अत्यन्त भिन्न हैं। संसार के वैज्ञानिकों ने सत्य की खोज में सफलता पाई है। विद्वानों ने प्रकृति का अध्ययन किया है और वे इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि रोगों में यदि प्रकृति का अनुसरण न किया जायगा तो चिकित्सा में सफलता न मिलेगी। इसी नई खोज के परिणाम स्वरूप प्राकृतिक चिकित्सा का जन्म हुआ है।

रोगों की संख्या

वैद्यक, यूनानी और डाक्टरी मत के अनुसार रोगों की एक अपरिमित संख्या है। दो, चार, दस, बीस सौ, दो सौ आदि किसी संख्या में रोगों के नाम, उनके कारण और सिद्धान्त नहीं बताये जा सकते। यदि सूक्ष्म बातों को छोड़ दिया जाय तो इस के सम्बन्ध में, वैद्यक, यूनानी और डाक्टरी में अधिक मत भेद नहीं है।

इन में मत भेद न होने का कारण है और कारण यह है कि एक, दूसरे का आधार लेकर आविर्भूत हुआ है। यों आगे चलकर उनमें भी एक प्रकार के कुछ अंतर पाये जाते हैं, किंतु स्वाभाविक रूप से उद्देश्य और विषय में, कार्य और सिद्धान्त में वे एक ही हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा का मूल और सिद्धान्त उन सब से भिन्न है, इस अनुकूलता और प्रतिकूलता को लेकर यहाँ अधिक आलोचना करने का कोई उद्देश्य नहीं है। केवल रोगों की संख्या और उनके मूल पर विचार करना है। हमारी वर्त्तमान चिकित्साओं का जहाँ यह मत है कि रोगों की कोई संख्या नहीं है वहाँ प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त से एक ही रोग है। अथवा यों [illegible] कि समस्त रोगों की जड़ एक ही है। जितने भी रोग उत्पन्न [illegible] कुछ निश्चित कारणों के साथ आगे बढ़ते हैं। प्राकृतिक चिकित्साशास्त्र के विद्वानों का कहना है कि प्राय: सभी रोगों में प्रतिकार के जिन साधनों को काम में लाया जाता है, उनमें परस्पर किसी प्रकार की विषमता नहीं है।

समस्त रोगों की उत्पत्ति

जब रोगों की जड़ एक ही है अथवा सभी रोगों का एक ही रोग है तो जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति भी एक ही स्थान से और एक ही कारण से होनी चाहिए।

इस सिद्धान्त के अनुसार नीचे की पंक्तियों में रोगों की उत्पत्ति पर विचार करना है। यद्यपि इस प्रश्न को लेकर पहले भी लिखा जा चुका है और उन्हीं बातों को लेकर प्रसंगवश यह भी स्पष्टीकरण किया जायगा। पूर्व कथनानुसार शरीर के भीतर मल के संचित होने पर विष की उत्पत्ति होती है। यह विष और कुछ नहीं है, हमारे खाद्य पदार्थों से निकले हुए मल का ही रूप है जो समय और संयोग पाकर विष का रूप धारण करता है

इसमें सन्देह का स्थान नहीं है। इसे अनेक प्रकार से समझा जासकता है। हम पीतल के बर्तनों में भोजन किया करते हैं। भोजन बनाने के काम में भी प्राय पीतल के बर्तन आते हैं, हम जिस थाली में भोजन करते हैं, रुचि पूर्वक खाना खाते हैं, किन्तु यही पदार्थ यदि उस थाली में रात भर पड़े रहते हैं तो दूसरे दिन उनका रूप बदल जाता है और उन पदार्थों की प्रकृति में परिवर्तन होजाता है। दूसरे दिन उनमें कसैला भाव उत्पन्न होजाता है। अब इन चीजों में सुरुचि नहीं रह जाती। उनको यदि जिह्वा पर रखा जाय तो विष का कड़ुआपन मालूम होता है। निश्चय ही अब वे खाने के योग्य नहीं रह जातीं। और यदि उनको खाने के काम में लाया जाय तो न केवल वे पीड़ा उत्पन्न करेंगी बल्कि हमारे शरीर के लिए घातक सिद्ध होंगी।

इसी प्रकार मनुष्य के पेट के भीतर आमाशय में भोज्य पदार्थों से उन तत्वों के निकालने का काम होता है जो मनुष्य को जीवित रखने का काम करते हैं और शरीर में प्राण शक्ति उत्पन्न करते हैं। शेष अंश मल रह जाता है जो मल द्वार से शरीर से बाहर होजाता है। यही दशा अन्य पदार्थों की भी होती है।

रोग उत्पन्न करने वाले ये मल विशेष प्रकार के मल हैं। इनके सिवा दूसरे कारणों से भी शरीर में मल एकत्रित होता है और जितना भी मल एकत्रित होता है, उसको शरीर से निकालने का कार्य शरीर के भीतर छोटे-बड़े अवयव बराबर किया करते हैं।

बस यहीं पर समझ लेना चाहिए कि इन मलों के सिवा और कोई कारण रोगों की उत्पत्ति का नहीं होता। मोटे-मोटे तीन ही भाग हैं, जिनका कि वर्णन हो चुका है और यही इस प्रकार हैं—

(१) खाद्य पदार्थों के द्वारा उत्पन्न हुआ मल।

(२) पेय पदार्थों के द्वारा उत्पन्न हुआ मल।

(३) नाक तथा शरीर के अन्यान्य भागों से प्रविष्ट करने वाली वायु से उत्पन्न हुआ विकार-भाग।

(४) शरीर के भीतर अपरिमित संख्या में काम करने वाले तत्वों के नष्ट होने पर उत्पन्न हुआ विकार।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों से शरीर में मल अथवा विकृत अंश तैयार होता है जो अपने आप शरीर से निकलता रहता है। जितने ही कारणों से यह मल भली प्रकार निकल नहीं पाता, उस दशा में रुका हुआ मल संचित होने लगता है। उसी के द्वारा रोग उत्पन्न होते हैं। जो रोग पैदा होते हैं, उनको डाक्टर और वैद्य दबाने की चेष्टा करते हैं और प्राकृतिक चिकित्सा में उनको शरीर से निकालने का प्रयत्न किया जाता है।

मल के संचित होने का कारण

यह तो स्पष्ट ही हो चुका कि समस्त रोग मल की रुकावट से उत्पन्न होते हैं। किंतु यहाँ पर एक शंका उत्पन्न होती है कि जब हमारे शरीर के भीतर मल को निरन्तर निकालने की व्यवस्था है तो फिर मल में रुकावट होने का और संचित होकर विष देने का कारण क्या है?

यह प्रश्न ठीक है और उसका समझना सर्वसाधारण के लिए आवश्यक है। इसमें सन्देह नहीं कि शरीर मल और विकारों के निकालने का कार्य निरन्तर रूप में किया करता है। और यदि हमारे जीवन स्वाभाविक आहार-विहार में व्यतीत हों तो बहुत कम ऐसे कारण उत्पन्न होंगे, जिनसे मल की रुकावट में सहायता मिले। किन्तु सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य के जीवन की स्वाभाविकता अधिकांश रूप में मिट गयी है। यही कारण है कि मनुष्य का शरीर नीरोग रहने के स्थान पर रोगी अधिक रहा करता है। शरीर की वास्तविकता यह है कि प्राकृतिक जीवन बिताने पर भी शरीर में विकार और मल उत्पन्न होते हैं और उस दशा में भी शरीर को विकारों से शुद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। फिर अप्राकृतिक जीवन बिताने पर !

अब हमें मल के सञ्चित करने वाले कारणों पर भी विचार कर लेना चाहिए। उनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारा जीवन प्रकृति की व्यवस्था का किस प्रकार भंग करता है। मल की रुकावट के निम्नलिखित कारण होते हैं—

(१) एक बार का खाया हुआ भोजन ठीक-ठीक न पचने पर दूसरी बार फिर खा लेना।

(२) आमाशय में पाचन क्रिया का कार्य करने वाले अंगों के ऊपर उनकी शक्ति से अधिक कार्य का बोझा डालना।

(३) रुग्णावस्था में पाचन क्रिया के मंद हो जाने अथवा बंद हो जाने पर भी भोजन करना।

(४) मल-विसर्जन का कार्य ठीक-ठीक न होने पर भी भोजन करते रहना और मल का परिमाण बढ़ाते रहना।

(५) जो वायु हमारे फेफड़ों में पहुँचती है उसका ठीक-ठीक न निकलना और फेफड़ों के रिक्त स्थानों में शुद्ध वायु का मिलना।

यदि सच पूछा जाय तो मनुष्य का जीवन [illegible] और जानवरों से भी बहुत गिरा हुआ है। उनके जीवन [illegible] में स्वाभाविकता है। परन्तु मनुष्यों ने अपने जीवन की स्वाभाविकता का नाश कर दिया है। जो पदार्थ मनुष्य के खाने के नहीं हैं उनके खाने से यही परिणाम होगा कि मनुष्य का आमाशय उसे पचाने का कार्य ठीक ठीक न कर सकेगा। किन्तु मनुष्य के खाने का कार्य बराबर जारी रहेगा। हम लोगों का जीवन ऐसा अस्त व्यस्त हो गया है कि उसको देखकर आश्चर्य करना पड़ता है। जब कभी काम-काज में खाने पीने की व्यवस्था होती है तो ए[illegible] तो वे चीजें खाने को मिलती हैं जो सहज ही अपाच्य होती और उसपर भी इतना ठूस-ठूसकर खिलाया जाता है कि भोजन स्थल से उठकर घर पहुँचना कठिन हो जाता है। इसका परिणाम कैसे अच्छा हो सकता है।

जो मनुष्य अधिक-से-अधिक एक मन बोझ लेकर च[illegible] सकता है, उचित तो यह है कि उसके सिर पर एक मन से क[illegible] ही बोझ रखा जाय। किन्तु यदि उसके सिर पर, डेढ़ मन [illegible] दो मन का बोझ रख दिया जायगा तो उसका फल क्या होगा

हो न कि यह मनुष्य कुछ दूर चलेगा और फिर थककर गिर जायगा। ठीक यही दशा हमारे शरीर के उन अंगों की है जो आमाशय में पाचन-क्रिया का कार्य करते हैं। प्रकृति ने पचाने वाले अंगों की शक्ति के अनुसार भोजन करने की एक तोल नाप प्रत्येक मनुष्य के साथ देदी है। आह, प्रकृति की यह सफलता कितने कमाल की है! खानेवाला उतना अधिक न खाजाय, जितना अधिक उसके आमाशय में पचाने का कार्य न होसके, इसके लिए उसने एक तोल-नाप देरखी है। यह तोल-नाप इस रूप में है कि प्रत्येक मनुष्य अथवा खानेवाला इच्छा के अनुसार उतना ही खाना खाता है, जितना खाना उसका आमाशय सरलतापूर्वक पचा सकता है। किन्तु जब उससे अधिक होने लगता है तो खाने वाले को अपने आप अनिच्छा मालूम होती है। किन्तु दो ही कारणों से वह अधिक भोजन खाता है। या तो अच्छे भोजन के प्रलोभन में अथवा किसी के अधिक आग्रह करने पर। इसका फल कभी अच्छा नहीं होसकता।

रोगों का प्रतिकार

अन्याय बातों के साथ-साथ, रोगों के प्रतिकार में भी प्राकृतिक चिकित्सा का अन्य चिकित्साओं के साथ मत भेद है। जैसा कि पिछले पन्नों में लिखा गया है, औषधियाँ प्रत्येक रोग में, रोग को दबाने का कार्य करती हैं। प्राकृतिक चिकित्सा इसके विरुद्ध है। यह अपने सिद्धान्त के अनुसार रोग उत्पन्न करने वाले

कारणों के—मल के विष के निकालने का काम करती है। रा
के दबाने पर इस चिकित्सा का विश्वास नहीं है। हमारा कार्य
केवल यह कि जो प्रकृति, रोग उठते ही उसके प्रतिकार का व्यवस्था
करने लगती है, उसकी सहायता की जाय।

प्रकृति के बनाये हुए मार्ग के अतिरिक्त रोग निवारण का
कोई दूसरा मार्ग नहीं हो सकता। जब यह सत्य है तो फिर प्रकृति
के मार्गों का क्यों बन्द किया जाय। जैसे हमारा एक स्वामी है
यह जो कुछ करता है, उसमें यदि हमारी सहायता होती है तो
स्वामी का काय सरल हो जाता है और यदि उसके विरुद्ध कुछ किया
जाता है तो वही काय कठिन हो जाता है। प्रकृति के कार्यों में
भी यही बात है। चिकित्सा का केवल यही उद्देश्य होना चाहिए।

यह तो सच ही है कि प्रकृति हमारे शरीर से रोगों के निवा-
रण का कार्य करता है। अब किसी भी शास्त्र और विज्ञान का
यह काय है, कि ऐसे नियम, उपनियम और व्यवस्थाओं का
आविर्भाव कर, जिनसे रोग-निवारण में प्रकृति को सहायता मिले।
ऐसा करने से जिस शास्त्र अथवा विज्ञान की रचना होगी, उसी
का नाम चिकित्सा शास्त्र अथवा चिकित्सा-विज्ञान होगा। सारांश
यह कि चिकित्सा का यह काय होना चाहिए। यदि इसके विरुद्ध
समाज की कोई चिकित्सा काम करती है तो उससे कल्याण की
आशा कम है।

प्राकृतिक चिकित्सा का एक मात्र उद्देश्य यही है कि वह
रोग-निवारण में प्राकृतिक कार्यों की सहायता करे और ऐसे

साधनों के द्वारा करें जिनसे रोगी को उसी समय से शान्ति और संतोष मिल सके।

इस प्रकार औषधि वाली चिकित्सा के साथ प्राकृतिक चिकित्सा का अथवा उपवास के प्रयोगों का अनेक प्रकार मत-भेद है। यह मतभेद उत्तरोत्तर घटता जाता है और समाज में ऐसे आदमियों की वृद्धि होती जाती है जो रोग निवारण करने में प्राकृतिक साधनों को अधिक महत्व देते हैं।

११—रोग और उपवास के प्रयोग

किसी भी रोग को दूर करने के लिए जिन कार्यों में उपवास के प्रयोग किये जाते हैं वह एक प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा है। यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा में और भी कई एक साधनों का प्रयोग किया जाता है। जैसे धूप के प्रयोग, जल के प्रयोग और मिट्टी के प्रयोग। इन प्रयोगों के द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है। उपवास के प्रयोग, जल के प्रयोग, मिट्टी के प्रयोग आदि आदि रोग-निवारण के जितने साधन हैं, वे सब एक, दूसरे के साथ इस प्रकार एक सूत्र में बँधे हुए हैं कि जहाँ एक की आवश्यकता होती है वहाँ दूसरा अवश्य आ जाता है। इसलिए हम यदि उपवास के प्रयोग के स्थान पर, इन पन्नों में प्राकृतिक चिकित्सा शब्द का व्यवहार करें तो उपवास के प्रयोग से वह भिन्न न समझा जायगा।

पिछले पन्नों को पढ़कर यह समझा जासकता है कि रोग क्या हैं, औषधि वाली चिकित्सायें क्या काम करती हैं एवं उपवास के प्रयोग अथवा प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त क्या है। इन प्रश्नों को लेकर भली प्रकार पिछले पन्नों में लिखा जाचुका है। उससे आगे क्या जानना चाहिए, इस पर कुछ यहाँ लिखा जायगा।

उपवास के प्रयोगों का आश्चर्यजनक प्रभाव

इन प्रयोगों का सबसे बड़ा महत्व यह है कि छोटे-से-छोटे रोगों से लेकर, बड़े-से-बड़े रोगों तक उपवास के प्रयोग अनेक प्रकार के लाभ पहुँचाते हैं। साधारण अवस्था में जब शरीर अनमना हो जाता है तबीयत भारी मालूम होती है कुछ अच्छा नहीं लगता किसी प्रकार समय नहीं कटता इस दशा में यदि उपवास के प्रयोग काम में लाये जाते हैं, तो हमारा तो नित्य का अनुभव है कि उसी समय से एक प्रकार की शान्ति मिलती है। चित्त का भारीपन हलका मालूम होता है। यह अवस्था किन्हीं औषधियों द्वारा कदापि सम्भव नहीं।

उपवास के प्रयोग क्या होते हैं, इनमें क्या किया जाता है आदि बातों का वर्णन कुछ आगे चलकर क्रमशः किया जायगा। उसके पहले उनपर कुछ लिखना अप्रासंगिक होगा, इसीलिए उन पर कुछ लिखा नहीं गया। किन्तु उपवास के प्रयोगों में यह न समझ लेना चाहिए कि खाना छोड़ देना और उपवास करने लगना ही उपवास के प्रयोग हैं। ऐसा अनुमान लगा लेने से उपवास के प्रयोगों के समझने में बड़ी भूल होगी। उपवास के द्वारा चिकित्सा का एक विज्ञान काम में लाया जाता है, उसी का नाम है, उपवास के प्रयोग अथवा उपवास चिकित्सा। इसमें केवल उपवास करने से ही काम नहीं चल जाता, किन्तु उसके साथ-साथ कई प्रकार की क्रियायें की जाती हैं। उन सब से मिलकर उपवास के प्रयोग अथवा उपवास चिकित्सा का कार्य पूरा होता है।

जो लोग इन प्रयोगों का ज्ञान रखते हैं और उनका प्रयोग करते हैं, वे बहुत कम रोगी होते हैं। किन्तु यदि उनके शरीर में किसी प्रकार रोग की सम्भावना होती है, तो वे वहीं से उसका समूल नाश करते हैं। हमारी समझ में इन प्रयोगों की यह अद्भुत सफलता है। और जिनके लाभों से वही परिचित हैं जो विश्वास पूर्वक उनको काम में लाते हैं।

असाध्य रोग और उपवास

उपवास के प्रयोगों का सब से विलक्षण प्रभाव और महत्व यह है कि जो रोग पुराने हो जाते हैं और असाध्य माने जाते हैं अर्थात् जिनके अच्छे होने की सम्भावना नहीं रह जाती उन रोगों में उपवास के प्रयोगों को विलक्षण रूप में सफलता मिलती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पुराने और असाध्य रोगों में औषधियों का महत्व बिल्कुल असफल सिद्ध हुआ है। कुछ ऐसे रोग पाये जाते हैं जो समाज में बहुत बुरी तरह फैले हुए हैं और जिनके कारण समाज का जन-समुदाय जर्जरित हो चुका है, उन रोगों में औषधियाँ काम नहीं करतीं। इस प्रकार के रोगों में प्रदर, दमा, काली खाँसी आदि जैसे रोगों की तो भरमार है और जिनके सम्बन्ध में औषधियों के चिकित्सक पूर्ण रूप से निराश पाये जाते हैं। इनमें प्राकृतिक चिकित्सा अथवा उपवास के प्रयोगों का जादू का-सा असर होता है।

कुछ ऐसे रोग होते हैं जो साधारण निराहार से उत्पन्न होते किंतु आगे चलकर अत्यन्त भयानक हो जाते हैं और फिर नका अच्छा होना कठिन ही नहीं असम्भव-सा हो जाता है। से रोगों में आमाशय के रोग पुराने बुखार सन्निपात वात रोग जीर्णज्वर आदि हैं। इन रोगों के रोगी औषधियों द्वारा कदाचित् ही कहीं अच्छे हुए हों। होता यह है कि दुर्भाग्य से जो लोग इन रोगों में फँस जाते हैं वे शक्ति भर औषधियों में रुपया फूँकते हैं और दिन पर-दिन शरीर को जीर्ण बनाते जाते हैं। फल यह होता है कि जब तक जीवित रहते हैं, अपने असाध्य रोग के कारण निराश एवं आनन्दहीन जीवन बिताते हैं और अंत में मरकर चले जाते हैं।

यहाँ पर ऐसे रोगियों के कुछ उदाहरण देना अनुचित न होगा। उनकी घटनायें उपवास के महत्व की वृद्धि करती हैं और निर्बल विचारों के मनुष्यों में विश्वास की स्थापना करती हैं। साथ ही उपवास के मार्ग में जो लोग नये नवीन रूप में आकर रहते हैं, उनके मार्ग को साफ करता है।

खाँसी का पुराना रोगी

बनारस में प० दीनदयालु एक हमारे परिचित मित्र रहा करते थे। उनकी एक लड़की जिसकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी, खाँसी से बीमार थी। इस रोग में उसको लगभग तीन वर्ष बीत चुके थे। पंडित जी एक अंग्रेजी हाई स्कूल में, अंग्रेजी-अध्यापक थे।

लड़की की खाँसी में पण्डित जी ने अनेक प्रकार की चिन्ताएँ कीं। पहले वे डाक्टरी इलाज करते रहे, परन्तु उससे कुछ लाभ न हुआ तो उनसे लोगों ने कहा कि वैद्यक इलाज फायदा करेगा।

पंडित दीनदयालु ने एक आयुर्वेदाचार्य वैद्य की शरण पकड़ी छ: मास से अधिक तक वे उन्हीं की दवा करते रहे। वैद्य जी का कहना यह था कि रोग पुराना होगया है। कुछ अरसे तक दवा करनी पड़ेगी। वैद्य जी प्रसिद्ध आदमी थे। उनके सबंध में सन्देह करने की गुञ्जाइश न थी। आशा में ही दो मास और बीत गये। इसके बाद पं० दीनदयालु की भेंट एक साधु से हुई। उसने भी कुछ दवायें बतायीं। उनका भी वे इलाज करते रहे परन्तु कुछ विशेष लाभ न हुआ।

इस बीच में औषधियों के प्रयोग से होता यह था कि खाँसी का जोर कभी-कभी कम होजाता था। परन्तु पूर्ण रूप से वह अच्छी न होती थी। कुछ दिनों में निराश होकर पंडित जी ने उसकी भी दवा बन्द कर दी।

दवा बन्द करने के बाद खाँसी और भी जोर पकड़ने लगी। खाँसी का रोग आरम्भ होने से पहले लड़की काफी तन्दुरुस्त थी लेकिन इस रोग ने उसकी तन्दुरुस्ती का नाश कर दिया। वह बहुत सूख गयी थी। कुछ दिनों के बाद पंडित जी ने किसी के परामर्श से प्राकृतिक चिकित्सा का आश्रय लिया और लड़की को नियमानुसार उपवास के प्रयोग कराये। पहला ही प्रयोग सा

दिनों का हुआ। इस बीच में खाँसी बहुत कम होगयी। इसके बाद एक मास तक लड़की की दशा मामूली रही। पंडित जी ने दूसरी बार फिर उपवास के प्रयोग कराये। इस बार ग्यारह दिनों का उपवास कराया। उन दिनों में उसकी खाँसी बिल्कुल शान्त होगयी थी ग्यारह दिनों के बाद जब उपवास भंग किया तो उसकी खाँसी बिल्कुल अच्छी होगयी थी। परन्तु उसके बाद भी उसको लगभग डेढ़ मास तक बिना छने हुए गेहूँ की रोटी अंगूर के फलों के साथ देते रहे। इसके बाद वह लड़की बिल्कुल अच्छी होगयी और फिर उसको कभी खाँसी का रोग नहीं हुआ।

श्वास का रोगी

मुंशी लालबिहारी एक मिडिल स्कूल के हेड मास्टर हैं। मुंशी जी की अवस्था जिस समय लगभग चालीस वर्ष के थी, उस समय से उनको श्वास की बीमारी होगयी। इसके पहले उनको खाँसी आरम्भ हुई थी। बहुत दिनों तक खाँसी अच्छी न हुई और मुंशी जी ने भी उसकी विशेष चिन्ता न की। फल यह हुआ कि उनको श्वास का रोग हो गया। इस पर उनको कुछ चिंता हुई और वे इधर-उधर की दवायें करने लगे।

मुंशी जी बड़े कंजूस आदमी थे। इसलिए वे कुछ खर्च न करना चाहते थे, परन्तु अच्छे होना चाहते थे। कोई फल न हुआ। श्वास का रोग धीरे-धीरे बढ़ने लगा। उनका शरीर दिन-पर-दिन घुलता जाता था। मुंशी जी की स्त्री पढ़ी लिखी और समझदार

थीं, उन्होंने इसके सम्बन्ध में लापरवाही अच्छी नहीं सम
इसलिए दवा के लिए कोशिश की। कुछ दिनों तक डा
क्टरी दवा खाना रहीं। उसके बाद एक होमियोपैथ डा
की चिकित्सा शुरू हुई। इससे कुछ रोग शान्त हुआ। पर
तक दवा करने के कारण मुंशी जी का बहुत नुकसान हु
उसके बाद दवा बन्द कर दी। इसके उपरान्त कुछ ही दिन
उनका रोग बहुत बढ़ गया, जिसके कारण मुंशी जी की
बहुत खराब होने लगी।

मुंशी लालबहादुर वैद्यों पर विश्वास न करते थे।
फिर डाक्टरी दवायें आरम्भ हुईं। अच्छे से अच्छे डाक्टरों
दवायें की गयीं परन्तु रोग अच्छा न हुआ। जितने दिन
चलती थी, उतने दिन कुछ शान्ति बनी रहती थी और
दिन को दवा बन्द कर। पर वह फिर ज्यों का त्यों हो जाता।
इसी दशा में उनके कई वर्ष बीत गये। मुंशी जी को बहुत कष्ट
लगा। अन्त में उनके एक मित्र ने उनके अच्छे हो जाने का वि
श्वास दिलाया। मित्र महोदय पानी का इलाज करते थे और
वास चिकित्सा के बड़े पक्षपाती थे।

मुंशी जी के ऊपर इस बात का बड़ा प्रभाव पड़ा कि उप
के प्रयोगों में उनका कुछ खर्च न होगा। इसीलिए इसके
वे अपने अच्छे होने पर विश्वास भी करने लगे। मुंशी जी
मित्र ने मुंशी जी को सात रोज का उपवास कराया। उसके ब
एक सप्ताह रोककर फिर पन्द्रह दिनों का उपवास कराया।

-नों में उपवास चिकित्सा के सभी प्रयत्न किये गये। उपवास के न में जो एनीमा दिया गया, उससे उनके शरीर से बहुत दुर्ग- न्धित काला और सूखा हुआ मल गिरा। दूसरी बार के -पवास के प्रयोगों से मुंशी जी का स्वयं अपना शरीर बहुत लका मालूम हुआ। जब दूसरी बार का उपवास प्रारम्भ करने र आये उन दिनों में उनके मुंह में गिरने वाले कफ का परि- माण बहुत कम होगया था। श्वास का उठा हुआ रोग बहुत क्षीण हो गया था। कभी कभी मामूली खांसी आजाती थी। उपवास तोड़कर वे दो महीने तक अत्यन्त प्राकृतिक भोजन करते रहे। इस बीच में उनको कोई कष्ट नहीं हुआ। मुंशी जी के मित्र वहाँ से चले गये थे, किन्तु दो महीने के बाद वे फिर आये और उन्होंने आकर फिर सात दिनों का उपवास कराया। इस बार उन्होंने और भी कई एक प्रयोग किये। फल यह हुआ कि मुंशी लालबहादुर का श्वास रोग बिलकुल अच्छा होगया और उसके बाद उनका शरीर फिर पहले की भाँति तन्दुरुस्त होगया।

मेदे की कमजोरी

सात-आठ वर्ष का एक लड़का था। लड़के के माता-पिता अमीर आदमी थे। माता पिता तो रोगी न थे, परन्तु लड़का अपने छुटेपन से ही रोगी था। उसका शरीर बहुत निर्बल था, और उसे एक-न-एक रोग बना ही रहता था जिसके कारण उसकी दशा होती ही रहती थी।

लड़के की बराबर बीमारी का कारण यह था कि उसका मर्म बहुत कमजोर था, जो कुछ खाना खाता था, उसको हजम न होता था। इसके कारण उसको कोई न-कोई रोग होता ही रहता था। रोगी रहने के कारण लड़के का शरीर बहुत दुबला पतला था।

पिता अपने लड़के को तन्दुरुस्त देखना चाहता था। इसके लिए अच्छे-से-अच्छे वैद्यों के द्वारा लडके के लिए पुष्टिकारक औषधें दिलायी जाती थीं और खाने-पीने में सदा रक्त बढ़ने वाला चीजों के देने का प्रबन्ध रखा जाता था। परन्तु इन बातों से कोई लाभ न होता था बल्कि रोगों की संख्या बढ़ती जाती थी।

किसी समय अपने उस रोगी लडके को लिए हुए पिता रेल गाड़ी में आरहे थे। गाड़ी में ही किसी प्राकृतिक चिकित्सक से उनकी भेंट हुई। उसकी बातें मालूम होने पर आपने अपने लड़के को दिखाया और कई-एक बातें पूछीं। लड़के के पिता को इस बात से बहुत संतोष मिला कि लडका सदा के लिए नारोग हो सकता है और उसका यह दुबला-पतला शरीर मोटा हो कर लड़के की तन्दुरुस्ती का कारण बन सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सक की सम्मति के अनुसार लड़के को उपवास कराये गये और पूर्ण रूप से उपवास के प्रयोग किये गये। पहला ही उपवास तेरह दिनों का दिया गया लेकिन उपवास के दिनों में प्रति दिन एक बार सन्तरे का रस और अगूर दिया जाता था। उपवास के इन तेरह दिनों में लड़के को कोई विशेष कष्ट न हुआ। उपवास तोड़ने के बाद कुछ दिनों तक उसके

जन में बहुत सावधानी से काम लिया गया। इसका फल यह था कि उस लड़के की पाचन-शक्तियाँ उत्तरोत्तर बलवान होती थीं। और एक महीने के पश्चात् वह ठीक-ठीक अपना काम करने लगा।

इसके पश्चात् भी लड़के के लिए प्राकृतिक भोजन देने की ही व्यवस्था रखी गयी। तीन महीने के बाद लड़के की दशा बहुत अच्छी हो गयी। अब उसको किसी ओषधि की आवश्यकता न थी। जो कुछ वह खाता था, भली प्रकार उसको हजम कर लेता था। अप्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर लड़का फलों के खाने का अभ्यासी हो गया। इससे कुछ ही दिनों में उसकी तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी हो गयी।

स्वप्नदोष का रोगी

लगभग चौबीस वर्ष के एक युवक को स्वप्नदोष का रोग था। उसका यह रोग कई वर्ष का पुराना हो गया था। सोलह-सत्रह वर्ष की आयु में ही वह बुरी संगति में पड़ गया था। इसके बाद स्वयं वीर्यपात कर देने की उसको लत पड़ गयी थी।

उसकी इस आदत के कारण उसका शरीर निर्बल होने लगा। भूख बहुत कम लगने लगी। प्रायः सिर में दर्द रहा करता। उसके माँ-बाप ने कितने ही वैद्यों को दिखाया, लेकिन न तो वैद्य उसका कारण ढूँढ़ सके और न उस युवक ने अपने असली कारण को बताया।

कुछ दिनों में उसका वीर्य बहुत पतला पड़ गया और स्वप्नदोष होने लगा। कुछ दिनों तक यह दशा रहने के बाद उसकी हालत बहुत खराब हो गयी। कभी कभी उसका चित्त भग रहने लगा। इस बीच में अनेक प्रकार की दवायें हुई किन्तु कुछ लाभ न हुआ, अंत में वह एक प्राकृतिक चिकित्सक के पास गया। वहाँ रहकर उसने उपवास के प्रयोग किये। तीन दिनों तक केवल सन्तरे का रस लिया गया। उसके बाद ग्यारह दिनों तक पूर्ण रूप से उपवास कराया गया। आरम्भ में पाँच दिनों तक नित्य एनीमा का प्रयोग किया गया और नित्य ठण्डे पानी के स्नान दिये गये।

इसका फल यह हुआ कि उपवास की अवधि पूर्ण होने के पहले ही युवक का स्वप्नदोष मिट गया। उसको निर्बलता अधिक मालूम होती थी, किन्तु चित्त भग की शिकायत भी जाती रही। उपवास के अंत में युवक, पूर्ण नीरोग हो गया और उसके पश्चात् उसे फिर कभी स्वप्नदोष नहीं हुए। इस बीच में उसने अपने यौवन काल की भूलों को स्वीकार किया और भविष्य में उनको छोड़ देने की प्रतिज्ञा की।

कुष्ठ-रोगी

एक युवती को कुष्ठ का रोग हो गया था। विवाह के पूर्व उसको यह रोग न था, किन्तु विवाह के बाद ही इसकी शुरूआत हो गयी। कुछ दिनों तक तो अधिक न मालूम हुआ, किन्तु

धीरे धीरे उसकी वृद्धि होने लगी। शरीर में जहाँ-तहाँ सफ़ेद दाग पड़ने लगे और धीरे-धीरे बढ़ने लगे।

साधारणतया इस प्रकार का रोग किसी के समझ में नहीं आता और न आसानी के साथ उसकी चिकित्सा होती है। किन्तु जिसके साथ यह ब्याही थी, वह पैसेवाला व्यक्ति था। उसने कई स्थानों पर उसकी चिकित्सा कराई। वैद्य लोग रक्त-शोधन के लिए अर्क पिलाते रहे। अनेक महीनों के बाद भी रोगी की दशा में कोई परिवर्तन न हुआ।

अन्त में उस स्त्री के पति ने एक उपवास चिकित्सक की सहायता ली और उसे नियम पूर्वक उपवास के प्रयोग कराये गये। कुछ समय का अन्तर देकर दो लम्बे उपवास दिये गये। पहले में तो कोई विशेष फल न हुआ, किन्तु दूसरे में सफ़ेद दाग गायब होने लगे और उपवास का अन्त होते होते शरीर में एक भी दाग न रह गया। स्त्री के इस प्रकार सेहत होजाने के कारण पति को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उपवास के प्रयोगों का महत्व स्वीकार किया और जीवन-भर उनके प्रचार की प्रतिज्ञा की।

आमतौर से रोगों का मूल कारण कोष्ठबद्धता और मल का सञ्चय है। इस कारण का निवारण करने में उपवास को सहज ही सफलता मिलती है। साध्य रोगों से लेकर, असाध्य रोगों तक उपवास के द्वारा आरोग्य किये जासकते हैं। रोगी-दशा में भूख नहीं लगती। मनुष्य जिस भूख को अनुभव करता है, वह वास्तव में भूख नहीं होती वह झूठी भूख है और भूख के

नाम से केवल धारा देती है। सच्ची भूख उस समय तक नहीं लगती जब तक रोग का निवारण नहीं हो जाता। उपवास का सबसे बड़ा सिद्धान्त यही है। भयानक-से भयानक रोगों में भी उपवास सफलतापूर्वक काम करता है।

दक्षिण भारत में बेजवाड़ा नाम का एक स्थान है। वहाँ पर इण्डियन नेचरोपैथिक एसोसियेशन (Indian Naturop_thic Association)नामक एक संस्था है जो प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों द्वारा शरीर को आरोग्य करने का काम करती है। इस संस्था में उपवास के द्वारा नियमानुसार चिकित्सा की जाती है। इस संस्था से दि इण्डियन नेचरोपैथ (The Indian Naturopath नाम का एक मासिक पत्र निकलता है। उसमें प्राय ऐसे रोगियों की चर्चा रहती है जो अपने असाध्य रोगों से उपवास के द्वारा आरोग्य होते हैं।

उस पत्र में आरोग्य होने वाले रोगियों के वर्णन पढ़कर कभी कभी आश्चर्य मालूम होता है और उपवास के महत्वपूर्ण प्रभाव जानकर विस्मित हो जाना पड़ता है। यदि उनमें से कुछ रोगियों का यहाँ पर वर्णन किया जायगा तो कदाचित् यह लेख आवश्यकता से अधिक बड़ा हो जायगा। इसलिए उनके सम्बन्ध में अधिक न लिखकर, संक्षेप में कुछ परिचय दे देना ही आवश्यक मालूम होता है। निम्नलिखित रोगों में उपवास के प्रयोगों का प्रभाव एक विस्मयजनक बात है—

८ एक स्त्री की नाक में यह त्रुटि थी कि उसको कभी किसी प्रकार की सुगंधि और दुर्गन्धि का ज्ञान न होता था। नाक की घ्राण-शक्ति उसमें इतनी दुर्बल थी कि वह नारियल के तेल और इत्र में नाक के द्वारा कुछ अंतर न समझती थी।

यद्यपि यह अवस्था साधारणतया किसी रोग में नहीं समझी जाती और न उससे कोई कष्ट ही था। फिर भी उपवास-चिकित्सा की परीक्षा के रूप में यह स्त्री उपस्थित की गयी। उसका वजन १७६ पौंड था। नियमानुसार उसने पन्द्रह दिनों का उपवास किया। उसका वजन २१ पौंड घट गया। उपवास के दिनों में उसकी घ्राण-शक्ति जाग्रत हुई और वह शक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उपवास के पश्चात् उसकी घ्राणेन्द्रिय की त्रुटि बिल्कुल दूर होगयी।

९ एक आदमी को मानसिक निबलता थी और यह निबलता दिन-पर दिन बढ़ती जाती थी। उसका एक सप्ताह का उपवास दिया गया। पहले ही दिन उसने चिल्लाना शुरू किया और उसे मालूम हुआ कि मैं बहुत ज्यादा निबल होरहा हूँ। उसको बहुत ज़ोर की भूख भी मालूम हुई। परन्तु उसे खाने को न दिया गया। इस पर उसे मालूम हुआ कि मैं कल तक मर जाऊंगा। नित्य गरम पानी का एनीमा दिया जाने लगा और छः दिनों तक लगातार दिया गया। उसकी ज़बान पर बहुत मोटी पपड़ी जमी हुई थी। छः दिनों के बाद उसकी ज़बान साफ़ होगयी। उपवास के बाद उसको नारङ्गी का रस दिया गया और पाँच दिनों के बाद

भोगे हुए गेहूँ थाड़ी मात्रा मे उसको दिए जाने लगे। मानसिक निर्बलता उसकी दूर होगयी।

इस प्रकार क्षय के रागी पुराने आमाशय के रागी, वर्षों और प्रदर के रागी असाध्य-से-असाध्य अवस्था में उपवास के द्वारा मोक्त किये जाते हैं। छाटे-छाटे बालक—एक-एक, दो-दो वर्ष के बच्चे उपवास के प्रयाग करते हैं और उन बामारियों में सेहत पाते हैं जिनके अच्छे होने की आशा नहीं होती जैसा कि नीचे के उदाहरण से प्रमाणित है—

अट्ठारह महीने की एक लडकी थी, उसके पेट में कुछ ऐसी खराबी थी, जिससे वह कुछ भी हजम न कर सकती थी। जो कुछ वह खाती थी, वह बिना किसी परिवर्तन के उसके पेट से निकल जाता था। लडकी की इस अवस्था के कारण माता-पिता बड़े कष्ट में थे। उसको सात दिनों का उपवास दिया गया। उपवास के दिनो में जब वह कुछ खाने को माँगती, शीतल और शुद्ध जल दिया जाता। उपवास के कारण उसकी पाचन शक्ति तीव्र होने लगी और उसके बाद लड़की तन्दुरुस्त हो गयी। जिससे उसके माता पिता के जीवन-भर का कष्ट दूर हो गया।

इस प्रकार उपवास से आराग्य हाने वाले न जाने कि रोगियों के उदाहरण दिये जासकते हैं। जिनको जानकर उपवास के महत्व पर विस्मय होता है। किन्तु ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, वे उपवास के प्रयोगों का सफल प्रभाव सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होंगे।

१२–उपवास के प्रति लोगों का विश्वास

जैसा कि पिछले पन्नों में बताया जा चुका है, उपवास की प्रथा और उसका महत्व बहुत प्रचार [illegible] समाज में चला आरहा है। इसका सम्बन्ध शरीर के साथ है। परन्तु पूर्वकाल में धर्म और तपस्या के साथ यह जोड़ा गया था। जो लोग इसका प्रयोग करते थे, वे लोग धार्मिक भावना से ही करते थे।

समाज की गति के साथ-साथ उपवास का महत्व भी बढ़ने लगा और अन्त में वह ऐसे विद्वानों के हाथ में पड़ा, जिन्होंने उसकी वास्तविकता की खूब खोज की। इसके महत्व को पश्चिम-विद्वानों ने सबसे अधिक समझा और उसके द्वारा उन लोगों ने शरीर-विज्ञान का खूब पता लगाया।

आगे चलकर उन विद्वानों ने उपवास के सम्बन्ध में जो अनुभव किए, उनको उन्होंने चिकित्सा-विज्ञान का एक रूप दिया और उनसे शरीर परिमार्जन एवं संशोधन का काम लिया। उन लोगों के अनुभवों में उपवास शरीर के रोग-निवारण में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। अतएव प्राकृतिक जीवन की अनेक प्रकार की छानबीन करके उन विद्वानों ने उसका एक रूप निश्चित् किया और उसके द्वारा प्राकृतिक उपायों से शरीर-परिष्कार का काम लेना आरम्भ कर दिया।

सब ने पहले उपवास के प्रयोगों का अँग्रेजी देशों में हुआ। वहाँ के विद्वानों के द्वारा इस विषय पर उपयोगी पु लिखी गयें, जिनका शिक्षित मनुष्य में आदर हुआ। इ का यह मान्यता केवल उन्हीं देशा मे सीमित न रही। वह उधर बढ़कर दूसर देशों मे भी फैलने लगी और उसका चारो तरफ प्रचार होने लगा।

वर्तमान चिकित्सा के साथ प्रतिद्वन्दिता

सम्पूर्ण मानव समाज में औषधियों की चिकित्सा थी। चिकित्सकों का व्यापार ससार के इस कोने से लेकर कोने तक फैला हुआ था। विदेशों में जब उपवास के में पुस्तकें लिखी गयीं तो पहले पहल बडी दिल्लगी उड़ाई गयी औषधियों के पक्षपातियों ने उपहास पूर्वक विरोध किया औ कहा—उपवास कोई चिकित्सा नहीं होती। कुछ लोगों ने यह कहा—उपवास सम्बन्धी बातें सभ्यता के इस युग में जगल बाते हैं।

इस प्रकार कितने ही लोगो ने उपहास किये। परन्तु जित विद्वानों ने उपवास के सम्बन्ध मे अनुभव किये थे पीछे हटने क बजाय, आगे बढने लगे। उन लोगों ने और भी अधिक लिख और उपवास के महत्वो का समर्थन किया। धीरे-धीरे इन बातों का कुछ शिक्षितो पर प्रभाव पडा और जब रोगियों के ऊपर उनका अनुभव किया गया तो लोगों ने उसका अद्भुत प्रभाव

…इत्याद भी हुए। इसी बीच में इसके समर्थकों का जन्म हुआ, जिनके द्वारा उपवास के प्रयोगों का समर्थन होने लगा। जो लोग औषधियों का प्रयोग करते-करते ऊब गये थे, और जिनके सामने उनके असाध्य रोगों को अच्छा करने का कोई उपाय न रह गया था, उन लोगों ने उपवास के प्रयोग किये और उनको पूर्ण सफलता मिली।

इस प्रकार एक के बाद दूसरे ने उपवास के प्रयोग किये। उससे लाभ हुआ। उसके बाद दूसरों ने प्रयोग किये और उनको फायदा हुआ। इस तरीके से धीरे-धीरे प्राकृतिक चिकित्सा के महत्वपूर्ण साधन का प्रचार बढ़ने लगा।

उपवास के प्रति लोगों के विश्वास की वृद्धि

इन दिनों में उपवास के प्रयोगों का शिक्षितों में काफी प्रचार हो गया है। देश के भिन्न-भिन्न नगरों में कुछ ऐसी संस्थायें स्थापित हो गयी हैं, जो इन प्रयोगों का प्रचार करती हैं। इस बार हमारे देश में ऐसा साहित्य भी प्रकाशित हुआ है, जिसने इस शिक्षितों में इन प्रयोगों के महत्व की वृद्धि की है।

आज यह दशा है कि एक खासी संख्या में लोग औषधियों का विरोध करने लगे हैं। यही नहीं, स्थान-स्थान पर ऐसे आदमी पाये जाते हैं जो अपने और अपने परिवार के रोगों में औषधियों का प्रयोग नहीं करते। ऐसे लोगों की जो संख्या पैदा हो गयी है उसके द्वारा इन प्रयोगों के प्रचार में और भी अधिक सहायता

रही है। जो सत्य है, उसका अस्तित्व कभी मिट नहीं
ता।

यह कहना अनुचित न होगा कि ओषधियों का प्रचार,
न समस्त संसार में कम होता जारहा है और चिकित्सा के
कृतिक विधानों का प्रचार दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है। इसके
न में जो दशा वर्तमान है, उसको देखकर कहना पड़ता है
भविष्य में औषधि चिकित्सा का स्थान बहुत कम रह
गा।

१३—शरीर में उपवास का प्रभाव

जो लोग उपवास के सम्बन्ध में कुछ अध्ययन करना चाहते हैं, अथवा शरीर को आरोग्य बनाने के लिए उपवास का आश्रय लेना चाहते हैं उनके लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि शरीर में उपवास का क्या प्रभाव पड़ता है ?

सचमुच उपवास का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसकी आलोचना की समस्या अत्यन्त पवित्र है। जो लोग इसके वैज्ञानिक प्रभाव से अनभिज्ञ हैं, वे इसके प्रभाव को न अनुभव कर सकते हैं और न उसकी जानकारी ही रख सकते हैं। इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे बहुत से वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, जिनके आविष्कार के पूर्व कोई भी उन पर विश्वास न कर सकता था। जब तक वायुयान न बने थे, कोई भी इस बात को न सोच सकता था कि मनुष्य की सवारी पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ सकती है। आज भी जिस देश में वायुयान न होते हों, अथवा जिन्होंने वायुयान न देखा हो, उनका विश्वास वायुयान के सम्बन्ध में नहीं हो सकता।

इस युग में न जाने कितने नित नये वैज्ञानिक यन्त्रों का आविष्कार होता रहता है। हम सब लोग जब तक उनको देख नहीं लेते, तब तक अविश्वास किया करते हैं और जब देख लेते हैं तो उस पर विश्वास करने लगते हैं। ऐसा होता ही रहता है।

उपवास की क्रिया के समय रोग भी नहीं होता है। जो लोग उसके अभ्यस्त हैं उनका आत्मबल स्वाभाविक है और जिन लोगों ने उसके समय में अनुभव किया है उनका विश्वास स्वाभाविक है।

यह देखा और समझा जाता है कि उपवास की क्रियाओं के द्वारा शरीर आरोग्य होता है किन्तु शरीर में उपवास के जो सूक्ष्म प्रभाव पड़ते हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण और पवित्र होते हैं। नीचे की पंक्तियों में उपवास के शारीरिक प्रभावों पर कुछ बातें बतायी जायँगी।

संचित मल का निकालना

हमारे शरीर में उपवास का जो सबसे पहला काम होता है, वह है—संचित मल का निकालना। पुस्तक के आरंभ में यह बताया गया है कि हमारे शरीर में किस प्रकार मल का संचय होने लगता है और उसके कारण से किस प्रकार मनुष्य रोगी बनता है? यहाँ पर उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। हाँ तो, उपवास हमारे शरीर में सबसे पहला काम यह करते हैं कि जो मल एकत्रित होजाता है उसको शरीर से बाहर करते हैं। रोग उत्पन्न होने के पूर्व और पश्चात्—दोनों अवस्थाओं में इस प्रकार मल विसर्जन की आवश्यकता पड़ती है।

जिन लोगों को इन बातों की जानकारी है, वे लोग उपवास के द्वारा मल विसर्जन का कार्य प्रायः करते रहते हैं। कोई भी

मनुष्य इस बात का सरलतापूर्वक समझ सकता है कि हमारे शरीर में मल का सचय हो रहा है। इतना जानने के बाद उसका यह कर्त्तव्य होता है कि एकत्रित मल का निकालकर शरीर को शुद्ध कर ले। अन्यथा विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होंगी।

कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं कि जिनको मल के सचय होने का ज्ञान नहीं होता, उनको किस प्रकार उसकी जानकारी होनी चाहिए ? हमारी समझ में यह बहुत साधारण बात है, जिसे प्रत्येक मनुष्य समझता है और समझ सकता है। फिर भी यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक है कि किन बातों से सचित मल की सूचना मिलती है—

१—मल-विसर्जन के लिए जब मनुष्य टट्टी या जगल में जाता है और जब वह विसर्जन का कार्य कर चुकता है तो इस बात को वह स्वय समझता है कि विसर्जन का कार्य भली प्रकार हुआ या नहीं।

२—जब पेट में मल सचित होने लगता है तो मनुष्य की सच्ची भूख मारी जाती है और वह झूठी भूख के लिए भोजन किया करता है।

३—खाने के पदार्थों में सुरुचि का अनुभव नहीं होता। सारे पदार्थ स्वादहीन मालूम होते हैं।

४—मुख का अन्तरंग भाग शुष्क होना स्वाभाविक है, किन्तु जिनके पेट साफ नहीं रहते और मल सचित होने लगता है। उनके

हैं में बार-बार पानी आता रहता है और वे एक एक क्षण में थूकने का काम किया करते हैं।

५—जिव्हा पर मैल जम जाता है।

६—मिचली-सी मालूम होती रहती है।

७—मल के अधिक संचित हो जाने पर उबकाइयाँ आया करती हैं और कभी-कभी वमन सा हो जाता है।

८—खट्टी डकार आया करती हैं।

९—तबीयत अनमनी रहती है। शरीर से प्रात्साहन मारा जाता है।

१०—आलस्य भरा रहता है। काम करने का साहस नहीं होता।

११—मुख भाग से जो वायु बाहर निकलती है, उसमें दुर्गन्धि मालूम होती है।

१२—शरीर से पसीना नहीं निकलता।

१३—जिसके शरीर में मल का संचय रहता है, उसको झूठी भूख अधिक लगती है और थोड़ी देर भी भोजन न मिलने से बेचैनी मालूम होती है।

उपरोक्त लक्षणों से स्पष्ट पता चलता है कि शरीर में मल का संचय हो रहा है। जो लोग इन लक्षणों से सतर्क एवं सावधान रहते हैं, वे पहले ही और दूसरे ही दिन मल के सम्बन्ध में जान लेते हैं और मल के ठीक-ठीक विसर्जन न होने पर साधारण रूप में आध दिन का या एक दिन का उपवास करके आमाशय

की क्रियाओं को ठीक कर लेते हैं। इस प्रकार उपवास मन जैन का काय करता है।

शरीर का संशोधन

प्रत्येक यत्र की सफाई की जाती है। किसी भी मशी अधिक टिकाऊ बनाने के लिए उसकी भीतरी और बाहरी करते रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। मशीन के लिए बड़े-से-बड़े किसी यन्त्र की सफाई, उसके छोटे बड़े पुर्जे खोलकर की जाती है और जब सफाई पूर्ण रूप से हो है तो चतुर मशीनमैन उसको फिर फिट कर लेता है। म का शरीर-यत्र मशीन के समान है। परन्तु शरीर की मश में और किसी मशीन की मशीनरी में अंतर है। मशीन को कर उसके एक एक पुर्जे को अलग किया जा सकता है उसकी सफाई होती है। उसके पश्चात् उनको फिर जोड़ जाता है। परन्तु शरीर की मशीनरी में ऐसा नहीं किया सकता।

फिर भी बाहरी सफाई के साथ साथ भीतरी सफाई आवश्यक है। जब शरीर की मशीनरी खोलकर अलग अ नहीं की जासकती तो फिर उसकी सफाई कैसे होसकती सफाई के लिए यत्रों और औजारों का पहुँचना तो दूर, वहाँ मनुष्य की दृष्टि भी नहीं पहुँचती, फिर शरीर के भीतर, उ आन्तरिक छोटे-से छोटे अगो, अवयवों और सूक्ष्म स्नायुओं सफाई कैसे हो ?

मशीन का मेल धोने के लिए मशीन को [illegible] करना है कि सफाई के लिए मशीन का एक एक पुरजा अलग कर लिया जाय और उनको फिर जोड़ लिया जाय। [illegible] ही बुद्धिमानी है। हमारे शरीर यंत्र का निर्माण [illegible] द्वारा हुआ है। तो क्या प्रकृति ही यह भूल [illegible] सफाई का कोई मार्ग नहीं रखा? [illegible] है। इससे इनकी [illegible] है कि [illegible] अच्छा मार्ग मनुष्य के द्वारा [illegible] नहीं [illegible] के आन्तरिक [illegible] स्वाभाविक [illegible] है, उस [illegible] के [illegible]—उपवास। उपवास के द्वारा शरीर के भीतरी [illegible] संशोधन का कार्य होता है। उपवास का यही अर्थ है और यही उसका कार्य है।

दो मशीनें हम अपने सामने रखें। एक वह जिसकी हमेशा सफाई होती रहती है और दूसरी वह जिसकी कभी सफाई नहीं होती। दोनों मशीन एक ही मेकर की बनाई हुई हों, दोनों एक साथ तैयार की गयी हों, दोनों एक साथ खरीदी गयी हों, दोनों से एक साथ काम लेना शुरू किया गया हो और दोनों ने बराबर दिनों तक काम किया हो। दोनों के कामों का यदि निरीक्षण किया जाय तो क्या कोई कह सकता है कि दोनों का एक-सा कार्य होगा? नहीं हो सकता। इसलिए कि उनमें से एक रोगी है और

दूसरी नीराग। जिसकी सफाइ नहीं हाती रहती, वह राग और जिसकी सफाइ हाती रहती है, वह नीरोग है। रोगी और नीरोग मे जितना अन्तर होता है, उनके कामों में जितना अन्तर पाया जाता है, वही दोना मशीनों में अन्तर मिलेगा।

इसी प्रकार हम दो आदमी लंल। एक वह जो उपवास द्वारा अपने शरीर का सशोधन किया करता है और दूसरा वह, जिसके शरीर का इस प्रकार कभी सशोधन नहीं होता। क्या कोई कह सकता है, दोनों मे कितना अन्तर होगा? उन दोनों में बहुत अन्तर होंगे और इस प्रकार होंगे—

१—एक के शरार म स्फूर्ति और प्रोत्साहन हागा। दूसरे का शरीर मलपूर्ण और विकारपूर्ण हाग।

२—एक का शरीर आरोग्य के प्रकाश से प्रकाशवान होगा और दूसरे का रागों की छाया से छायापूर्ण।

३—एक का शरार सदा-सवदा किसी-न-किसी राग का शिकार हागा और दूसरे का शरार सदा नाराग और आरोग्य हागा।

४—एक की शारीरिक और मानसिक मनोवृत्तियाँ परम शुद्ध और पवित्र हागी और दूसरे की अशुद्ध और अपवित्र।

५—एक के मनाभाव सदा प्रकृति के अनुगमी और ईश्वर के प्रति विश्वासपूर्ण होंगे और दूसरे के मनाभाव सतत राग-शोक और भाेग आदि विकारों से पारपूर्ण, प्रकृति के प्रतिकूलगामी तथा ईश्वर के डर स निरतर भयभीत होंगे।

इस प्रकार दोनों शरीरों में और दोनों मनुष्यों में अन्तर होगा। अब क्या कोई बता सकता है कि इस प्रकार के महान अन्तर का कारण क्या है? क्या कोई बता सकता है कि शरीर-संशोधन के अतिरिक्त इस विशाल भेद का और क्या कारण हो सकता है? बिल्कुल सीधी-सी बात है। इसको समझने के लिए थोड़े से ज्ञान की आवश्यकता है। बस, कोई भी समझ सकता है और लाभ उठा सकता है।

पाचन-क्रियाओं को शक्ति देना

शरीर में उपवास के, ऊपर दो काम बताये गये हैं। तीसरा काम उपवास का पाचन-क्रियाओं को शक्ति देना है। अन्य कामों की अपेक्षा उपवास का यह काम अधिक महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक है। हमारे पेट के भीतर जो अंग पचाने की क्रिया करते रहते हैं, उनको उत्तेजना देना, बलवान बनाना और उनमें अधिक कार्यशीलता पैदा करना उपवास का काम है।

जिनके शारीरिक अवयव पाचन-क्रिया में निर्बल पाये जाते हैं, खाया हुआ भोजन सहज ही जो पचा नहीं सकते और जो अपनी इस निर्बलता के लिए निरंतर दुखी रहा करते हैं, वे अपनी इस कमजोरी को दूर करने के लिए पुष्टिकारक दवाओं का सेवन करते हैं। किंतु कोई फल नहीं होता। फल न होने का कारण है और वह यह कि दवाओं के द्वारा पाचन-कार्य करने वाले अंगों को शक्ति नहीं मिल सकती। जो लोग इसके लिए दवायें देते हैं,

वे झूठा व्यापार करते हैं। सच्ची बात यह है कि इसने लाभ की अपेक्षा हानि होती है और वे अगगति पाते करस्वरूप निर्बल हो जाते हैं।

जो कृषक चतुर होते हैं, वे अपनी भूमि को उपजाऊ बनाने की चेष्टा किया करते हैं। उनको उसमें सफलता भी मिलती है। जो जमीन दस मन गेहूँ पैदा कर सकती है, उसमें दूगनी उपज की जा सकती है। किन्तु, कैसे ?

जो लोग कृषि-विज्ञान को जानते हैं, उनको इस बात का ज्ञान होता है कि जिस जमीन का बराबर प्रयोग किया जाता है, उसकी शक्ति धीरे-धीरे निर्बल होती जाती है और उसको शक्तिशाली बनाने एवं स्वाभाविक रूप से उसमें शक्ति उत्पन्न करने के लिए कम से-कम एक वर्ष उसका प्रयोग बंद कर दिया जाता है। जिस वर्ष उसको जोतने-बोने के काम में नहीं लाया जाता, उस वर्ष उसको खाद और पानी भी देने की जरूरत नहीं होती। ऐसा करने से आगामी वर्ष के लिए उस भूमि की उपज बढ़ जाती है और फिर बराबर कई कई वर्ष तक उसमें अच्छी उपज होती है। यही नहीं, जिस जमीन में ज्वार और मक्का पैदा होता रहता है, यदि उसमें कृषक, गेहूँ बोना चाहता है तो उसके लिए यह आवश्यक होता है कि वह उस जमीन को कम से-कम एक फसल के लिए यों ही पड़ा रहने दे और उसमें कुछ जोतने-बोने का काम न करे।

ऐसा करने से भूमि की उपज बढ़ जाती है। हमारे शरीर में उपवास जो काम करते हैं, वही काम भूमि के लिए जोतना

[illegible] से होता है। [illegible] उपवास ने [illegible] जाता है, किन्तु [illegible] दिन [illegible] उपवास किया जाता तब [illegible] ज्ञात [illegible] जाता है। [illegible] बिलो [illegible] जो [illegible] पृथक् [illegible] जाता है। [illegible] होता है, उतना ही शरीर [illegible]

जो लोग दवाओं के द्वारा [illegible] करते हैं, वे भूल करते हैं। उनके लिए [illegible] उपवास का योग है। ऐसा करने से उनकी [illegible] हो सकता है और [illegible] पाचन [illegible] दूर हो सकती है।

मन को शुद्ध और प्रसन्न करना

उपवास का यह चौथा प्रभाव है जिसके द्वारा मनुष्य को मानसिक शुद्धता और प्रसन्नता प्राप्त होती है। [illegible] इस प्रभाव के द्वारा उपवास शरीर को निर्मल बनाने का काय करते हैं।

जिनके शरीरों में मल और विकार भरे रहते हैं उनके चित्त कभी प्रसन्न नहीं रहते। इस बात को वे स्वयं समझते हैं और उनको देखने वाले जानते हैं। उपवास करने से, उसी दिन से शरीर में शुद्धता और प्रसन्नता पैदा होने लगती है।

यद्यपि मनुष्य स्वभावतः विकार प्रेमी नहीं है किन्तु विकारों में रहकर उसकी मनोवृत्ति सहनशील बन जाती है। होता यह

है कि यों तो कोई भी रोगी नहीं होना चाहता और एक मनुष्य किसी के रोग को देखकर अप्रियता का अनुभव परन्तु वही मनुष्य जब अधिक समय तक रोगी बन उसकी मनोवृत्तियों की स्वाभाविकता धीरे-धीरे नष्ट हो जाती और रोगी अवस्था के प्रति सहनशीलता का भाव पैदा जाता है।

यही अवस्था विकारपूर्ण मनुष्य की होती है। जिनके शरीर में विकार नहीं रहता, जो अपने शरीर का मल-वमन करते अनेक प्राकृतिक उपायों द्वारा शरीर को शुद्ध तथा निर्मल बनाये करते हैं। उनके मन के भाव जितने प्रसन्न और शुद्ध रहते हैं उतने उस मनुष्य के नहीं रह सकते, जिसका शरीर विकारों से लदा हुआ है। दोनों में इस प्रकार का अन्तर विशेष मात्रा में स्पष्ट बना रहता है।

इस प्रकार शरीर में अनेक भाँति के प्रभाव काम करते हैं। जिनके मुख्य नामों पर ऊपर प्रकाश डाला गया है। ये काम स्पष्ट रूप से बताते हैं कि न केवल नीरोग रहने के लिए उपवास के प्रयोग किये जाते हैं, बल्कि इनके द्वारा हमारा शारीरिक और मानसिक परिष्कार होता है और उसी दशा में हम जीवन की उन्नति की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

जो लोग उपवास के सम्बन्ध में अज्ञान होते हैं, वे उपवास को कुछ अनिष्टकर समझा करते हैं। इसका केवल कारण यह है कि उनको इन बातों का ज्ञान नहीं है और अज्ञानता अनेक प्रकार

भ्रान्तियाँ उत्पन्न करने का काम करती है। न जाने ऐसे कितने उदाहरण देखे जाते हैं कि जो लोग उपवास के पक्ष में नहीं थे समय और संयोग पड़ने पर उन्होंने उसके प्रयोगों को देखा, उससे लाभ उठाया और अन्त में उसके भक्त होगये। कुछ ऐसे आदमी मिले हैं जिनके रोग किसी चिकित्सा के द्वारा नहीं अच्छे हुए, किन्तु विवश अवस्था में उनको उपवास की शरण लेनी पड़ी।

इन बातों से इस बात का पता चलता है कि जिन लोगों को उपवास के चमत्कार देखने और जानने का संयोग नहीं मिला, इस कारण उसके प्रति उनमें एक अहितकर भावना भरी रहती है और जब उनके हृदयसे यह अजानकार अवस्था दूर हो जाती है तो वे ही मुक्त कण्ठ से उसके प्रशंसक हो जाते हैं। इस प्रकार के उदाहरण हमारे पास बहुत हैं। किन्तु उन सब का यहाँ लिखना अनावश्यक-सा मालूम होता है।

१४—उपवास का मानसिक प्रभाव

उपवास का जिस प्रकार शरीर के साथ सम्बन्ध है, प्रकार और कहीं-कहीं उससे भी अधिक उसका मान सम्बन्ध है। मनुष्य के मन में जो विकास की शक्ति है, लिए कब और किस प्रकार उपवास की आवश्यकता है। इस पर यहाँ कुछ विवेचना करनी है।

यद्यपि मानसिक भाग शरीर के सम्पूर्ण यन्त्र का एक भाग है किन्तु शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा मानसिक भाग में है। समस्त शरीर की अपेक्षा मनुष्य का मन और मं अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों के द्वारा बना हुआ है। मनुष्य जा कार्य करता है, वे कार्य भी सूक्ष्म और कोमल होते हैं। आश यह कि मानसिक काया की, शारीरिक कार्यों के साथ इसी की विभिन्नता है।

मस्तिष्क की उपमा छोटी किन्तु मूल्यवान घड़ियों क दी जा सकती है। जो लोग घड़ियों के संबंध में अधिक नहीं रखते, वे किसी बड़ी घड़ी को देख कर, उसकी बड़ी कीमत अनुमान करते हैं और छोटी घड़ी को देखकर छोटी कीमत परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं होती। जो घड़ी जितनी छो होती है, उतनी ही वह अधिक मूल्यवान होती है। उसके कार्य अत्यन्त सूक्ष्मतर होते हैं।

इस प्रकार पहियों की भांति मनुष्य के मस्तिष्क में भी न जाने कितने छोटे-छोटे अवयव काम करते हैं। [illegible] इतने सूक्ष्म तन्तुओं का कार्य होता है जो हमारी समझ में नहीं आते। इनके सम्बन्ध में डाक्टर लोग अधिक माथापच्ची करने की चेष्टा करते हैं। इन सूक्ष्म तन्तुओं और अत्यन्त कोमल धागों से बना हुआ मस्तिष्क, शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक परिष्कार चाहता है।

साधारण-से साधारण मनुष्य भी इस बात को जानते हैं कि बड़े यन्त्रों की अपेक्षा छोटे यन्त्रों में स्वच्छता की अधिक आवश्यकता होती है। बैलगाड़ी भी एक प्रकार की लकड़ी की मशीन है परन्तु उसकी अपेक्षा बाइसिकिल अधिक स्वच्छता चाहती है। इसलिए भी बाइसिकिल मोटर के इंजिन और उनसे रेलगाड़ी का इंजिन अधिक परिष्कार चाहता है। इसका कारण केवल मशीनरी है। यदि उनके साथ अधिक स्वच्छता और परिमार्जन से काम न लिया जाय तो यह निश्चित है कि उनके कल और पुर्जे खराब हो जाय। उनके बिगड़ने से समस्त मशीनरी ही बेकार हो जाय। इसलिए उनके सम्बन्ध में अधिक सावधानी से काम लिया जाता है।

तपश्चर्या और उपवास

इसके पहले हम लिख आये हैं कि प्राचीन काल में उपवास तपस्या के साथ जोड़ा गया था। जो लोग तपस्या करते थे, वही लोग अधिक उपवास किया करते थे। ऋषि और मुनि उपवास

को अपनी तपस्या का एक अंग समझते थे। यही नहीं दूसरे देशों में भी उपवास का सबंध सम्पूर्ण रूप से ... साथ माना जाता था।

हमने ऊपर लिखा है कि वास्तव में धर्म और ईश्वर के साथ उपवास का कोई सम्बन्ध नहीं है। उपवास करने से न तो ईश्वर प्रसन्न होता है और न देवता। फिर प्राचीन काल में उपवास का उसके साथ क्यों संबंध जोड़ा गया था यह विचारणीय समस्या है। क्या हमारे पूर्वजों ने उपवास का उपयोग गलत किया था? तपस्या और धर्म के साथ उपवास का सम्बन्ध न होने पर भी पूर्वजों ने भूल नहीं की थी। यदि उनकी आवश्यकताओं पर अनुशीलन किया जाय तो सहज ही उनके मन्तव्य को समझा जा सकता है और यह मालूम किया जा सकता है कि उनका जो अभिप्राय था, वह निरर्थक नहीं था।

मस्तिष्क का कार्य

मस्तिष्क सोचने-विचारने का कार्य करता है। वह कार्य हाथों पैरों के कार्यों से भिन्न होता है और इस बात को सभी जानते हैं कि सोचने-विचारने का एक समान नहीं होता। शारीरिक शक्ति ... शक्ति होती है। जिस प्रकार शरीर शक्ति से ... उठाये जा सकते हैं ... मस्तिष्क ... विषयों को सरलता ...

उतनी अधिक मानसिक शक्ति होती है, उतना ही अधिक वह विचार शील होता है।

प्रत्येक मनुष्य अपने आप को विचारशील बनाना चाहता है, परन्तु सभी चाहने वाले विचारशील नहीं बन पाते। विचार शक्ति उत्पन्न करने के लिए मानसिक बल की आवश्यकता होती है और मानसिक बल उन्हीं में उत्पन्न होता है जिनके शरीर निर्विकार होते हैं। विकारपूर्ण शरीर के मनुष्य में मानसिक विकास नहीं होता। विचारों के प्रति जब तक मानसिक शक्तियों में संलग्नता नहीं उत्पन्न होती, तब तक विचारशीलता का प्रादुर्भाव नहीं होता। जो मनुष्य मानसिक कार्यों में अधिक तन्मय हो जाता है, उसमें विचारशीलता अधिक पायी जाती है। संलग्नता और तन्मयता के लिए मस्तिष्क की जिस रूप-रेखा की आवश्यकता होती है। वह रूप रेखा और वह उस प्रकार उपवास के बिना मस्तिष्क में नहीं उत्पन्न हो सकती।

अध्ययन और मनन तपस्या है। तन्मयता, और संलग्नता तपस्या है —

यह तपस्या चाहे साहित्य के प्रति हो, चाहे राष्ट्र के प्रति हो और चाहे वह ईश्वर के प्रति हो। इस तपस्या के बिना कोई भी सफलता नहीं मिलती। सफलता के लिए तपस्या की आवश्यकता होती है और तपस्या के लिए तन्मयता तथा संलग्नता की। यह तन्मयता और संलग्नता अत्यन्त मिताहार चाहती है। उपवास, मिताहार का एक अंग है। जो लोग उपवास के द्वारा शरीर

का एवं मानसिक अंगों का संशोधन नहीं करते उनमें तन्मयता और संलग्नता की शक्ति नहीं उत्पन्न हो सकती।

पूर्वकाल में जो लोग तपस्या करते थे, और ईश्वर की आराधना में इतनी अधिक तन्मयता से काम लेते थे, जिससे वे अपने आपको ईश्वर की शक्तियों में मिश्रित करदें, मिताहार और उपवास से काम लेते थे। इसके बिना मानसिक शक्तियों का विकास नहीं हो सकता, यह निश्चित है।

मानसिक शक्ति

ऊपर की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानसिक विकास के लिए किस प्रकार उपवास के प्रयोगों की आवश्यकता पड़ती है। हम यहाँ पर यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि उपवास के बिना चाहे शरीर आरोग्य रह सके, रोग निवारण का कार्य चाहे औषधियों के द्वारा किया जासके, किन्तु मानसिक विकास मिताहार और उपवास के बिना असम्भव है।

यदि संसार के प्रतिभाशाली व्यक्तियों की ओर देखा जाय तो मालूम होगा कि उनके शरीर हलवाइयों की तरह मोटे-ताजे नहीं होते। उनके दुबले-पतले शरीर केवल मिताहारी होते हैं। उनके दुर्बल शरीर, ऐसा मालूम होता है, मानो विचारशीलता की तपस्या में घुल गये हैं। उनके शरीर, तपस्या का स्पष्ट परिचय देते हैं और यह तपस्या तन्मयता के द्वारा उत्पन्न हुई है। मोटे मनुष्यों में तन्मयता और संलग्नता नहीं होती।

मनुष्य जीवन के बाल्यकाल से ही मानसिक विकास का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि शारीरिक विकास और मानसिक विकास परस्पर प्रतिद्वन्दी हैं। इस विभिन्नता का परिणाम यह होता है कि जहाँ शारीरिक विकास होता है, वहाँ मानसिक विकास नहीं होता और जहाँ मानसिक विकास होता है वहाँ शारीरिक विकास नहीं होता। देखने मे भी यही बात मालूम होती है। एक पहलवान मे मस्तिष्क-बल नहीं होता और कोई प्रतिभाशाली मनुष्य पहलवान नहीं होता। ये दो मनुष्य हैं और दोनों एक, दूसरे से पृथक हैं।

ऐसी दशा मे यह कहा जासकता है कि शारीरिक विकास और मानसिक विकास साथ-साथ नहीं होसकते। परन्तु शरीर-विज्ञान के पण्डित इसका समर्थन न करेंगे। जहाँ शरीर का विकास होता है, वहाँ मानसिक विकास को, विकसित होने के लिए सुभीता मिलता है। शरीर विज्ञान का यह कहना है। फिर जो लोग कहते हैं कि शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ साथ-साथ विकसित नहीं होतीं, इसका कारण क्या है ?

कारण स्पष्ट है। शरीर-विज्ञान के पण्डित, पहलवानों के शरीरों को शारीरिक विकास मे नहीं मानते। आरोग्य विज्ञान के अनुसार पहलवानों के शरीर अत्यधिक रोगी होते हैं। उनके शरीर मे विकार और मल की पराकाष्ठा होती है। इसलिए शरीर विज्ञान के अनुसार, शारीरिक विकास का वहाँ तक सम्बन्ध

हैं जहाँ तक वह आरोग्य है। आरोग्य शरीर होने पर ही मानसिक विकास होता है।

जिनके शरीर नगा हैं अथवा जो प्राय: रोगी रहा करते हैं, उनका मस्तिष्क-बल उत्पन्न होता है और न प्रतिभाशाली में उनकी गणना होती है। किसी भी देश के प्रतिभाशाली इस बात के प्रमाणस्वरूप हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों में सदाचार, और मिताहार होता है। इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि जहाँ मिताहार है, वहाँ उपवास है और उपवास है वहाँ मिताहार है। मिताहारी, शरीर की शुद्धि के उपवास का आश्रय लेता है।

जो लोग अपने आप में मानसिक विकास चाहते हैं, प्रतिभा उत्पन्न करना चाहते हैं, उनके लिए तो यह अनिवार्य आवश्यक है कि वे अपना शरीर सदा शुद्ध और आरोग्य रखें। मानसिक-बल उत्पन्न करने का यह पहला साधन है। इसके पश्चात् उनको दूसरे साधनों से काम लेना पड़ता है। परन्तु इस बात पर विश्वास करना चाहिए कि जिनका पहला साधन पूरा नहीं होता, उनके अगले साधन अधिक लाभकर नहीं सिद्ध होते।

उपवास के दिनों में परिश्रम

कुछ लोगों का कहना है कि उपवास के दिनों में परिश्रम का कार्य नहीं होता। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि उपवास के दिनों में परिश्रम का कार्य करना भी न चाहिए। परन्तु जिन्होंने

[illegible] अनुमोदन [illegible] है [illegible]
[illegible] । [illegible] कहना है कि [illegible] के [illegible]
[illegible] [illegible] करना [illegible]

[illegible] के [illegible] हैं [illegible]
[illegible] सिद्ध करने [illegible]
[illegible] कहना है कि [illegible] करने से [illegible]
[illegible] को विशुद्ध [illegible] में [illegible]
[illegible] विद्वान [illegible] लोग
[illegible] करते हैं [illegible] तो अपने सामर्थ्य
[illegible] तक लिखा है कि कई कई [illegible] के उपवास [illegible]
[illegible] पर श्रम कर सके जितना अधिक परिश्रम [illegible] के दिना
[illegible] न कर सकते थे। कुछ विद्वानों का मत भी ऐसा है कि उप
वास के दिनों में शक्ति को उभार का संयोग मिलता है। इसीलिए
न दिनों में व्यायाम अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक किया
जा सकता है।

यह बात साधारणतया लोगों की समझ में न आवेगी। मामूली ढंग से तो लोग यही समझते हैं कि परिश्रम [illegible] वाले यदि एक समय भी पेट भर खाना न पावें तो दूसरे समय [illegible] होना कठिन हो जाता है। फिर जो [illegible] उपवास करके उनमें परिश्रम कैसे [illegible] है। जिन लोगों का ऐसा विश्वास है वे यदि इसके सम्बन्ध में कुछ [illegible] कर तो उनका झूठा विश्वास टूट सकता है।

पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि जो लोग श्र
शनाप, उलटा-सीधा खा-पीकर पेट-भर लिया करते हैं और
शरीर सदा विकारों से परिपूर्ण रहा करते हैं, उनको भूठी
अधिक लगा करती हैं। यह बात परीक्षा से मालूम हुई
जिनके शरीर आरोग्य हैं उनकी अपेक्षा रोगी और विका
शरीर वाले मनुष्य भूख को अधिक अनुभव करते हैं। यहाँ
यह समझ लेना चाहिए कि उनकी भूख सच्ची भूख नहीं ह
उनके भीतर जो मल और विकार मौजूद हैं, भूख की यह
उनकी माँग रहा करती है। क्योंकि शरीर में सचित और
त्रित मल भी खूराक चाहते हैं।

दूसरी बात यह है कि जब एक-आध दिन भोजन
मिलता तो आरोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा रोगी मनुष्य को अ
भूख लगती है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि जब उ
शरीर को नीरोग बनाने के लिए उपवास दिये जाते हैं,
दूसरे ही दिन से भूख के मारे चिल्लाने लगते हैं और कुछ ही स
बाद वे अपने शरीर में बहुत निर्बलता अनुभव करते हैं।
पर कुछ लोग तो यह भी अनुभव करते हैं कि यदि एक-
दिन भोजन और न मिला तो निश्चय ही मृत्यु हो जाय
ऐसे लोगों को बड़ी सावधानी के साथ उपवास दिये जाते हैं
किन्तु जैसे-ही-जैसे दिन आगे बढ़ते जाते हैं, उनकी भूठी
मरती जाती है और उसके स्थान पर उनके हृदय में श
पैदा होती जाती है।

यह भी देखा गया है कि जो लोग पहले उपवास-काल मे जितनी निर्बलता को अनुभव करते थे उतना अनुभव उन्होने दूसरी बार के उपवास-काल मे नहीं किया। इससे भी यही सिद्ध होता है कि एकाग्रत विकारों के कारण जो भूख मालूम होती है, वह केवल विकारों और उनसे उत्पन्न होने वाले रोगो की माँग होती है। विकारों और रोगों की मात्रा जितनी ही कम होती जाती है झूठी भूख की माँग उतनी ही शान्त होती जाती है।

इसी आधार पर यह समझ लेना चाहिए कि उपवास काल में जिस निर्बलता को अनुभव किया जाता है, वह निर्बलता वास्तविक निर्बलता नहीं होती। यह निर्बलता भी भूख की तरह आरंभ मे मालूम होती है, किन्तु जो लोग उसको समझते हैं वे लोग उसकी परवाह नहीं करते और अपने परिश्रम का कार्य एवं व्यायाम बराबर करते रहते हैं।

शिकागो की यूनीवर्सिटी मे एक बार प्रोफेसरों और विद्यार्थियों ने एक सप्ताह का उपवास लेना निश्चय किया। युनीवर्सिटी के अधिकाश विद्यार्थी और प्रोफेसर उसमे सम्मिलित हुए। नियमानुसार उपवास आरम्भ किया गया और सात दिनों तक प्रसन्नता पूर्वक चलाकर सभी लोगो ने एक साथ उपवास भंग किया। उपवास के दिनों मे सभी लोग शुद्ध जल मे खूब स्नान करते थे। प्रातःकाल कई-कई मील की वाकिंग होती और फिर यूनीवर्सिटी में बराबर शिक्षा का कार्यक्रम पूरा होता था।

पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि जो लोग [?] शनाप, उलटा-सीधा खा-पीकर पेट-भर लिया करते हैं और [?] शरीर सदा विकारो से परिपूर्ण रहा करते हैं, उनको भूठा [?] अधिक लगा करती हैं। यह बात परीक्षा से मालूम हुई [?] जिनके शरीर आरोग्य हैं उनकी अपेक्षा रोगी और विकार[?] शरीर वाले मनुष्य भूख को अधिक अनुभव करते हैं। यहाँ [?] यह समझ लेना चाहिए कि उनकी भूख सच्ची भूख नहीं हा[?] उनके भीतर जो मल और विकार मौजूद हैं, भूख की यह [?] उनकी माँग रहा करती है। क्योंकि शरीर मे सचित और [?] त्रित मल भी खूराक चाहते हैं।

दूसरी बात यह है कि जब एक-आध दिन भोजन [?] मिलता तो आरोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा रोगी मनुष्य का अ[?] भूख लगती है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि जब उ[?] शरीर को नीरोग बनाने के लिए उपवास दिये जाते हैं, [?] दूसरे ही दिन से भूख के मारे चिल्लाने लगते हैं और कुछ ही स[?] बाद वे अपने शरीर मे बहुत निर्बलता अनुभव करते हैं। [?] पर कुछ लोग तो यह भी अनुभव करते हैं कि यदि एक-आ[?] दिन भोजन और न मिला तो निश्चय ही मृत्यु हो जायगी[?] ऐसे लोगों को बड़ी सावधानी के साथ उपवास दिये जाते हैं किन्तु जैसे-ही-जैसे दिन आगे बढ़ते जाते हैं, उनकी भूठी भूख मरती जाती है और उसके स्थान पर उनके हृदय में शान्ति पैदा होती जाती है।

यह भी देखा गया है कि जो लोग पहले उपवास-काल में जितनी निर्बलता को अनुभव करते थे उतना अनुभव उन्होंने दूसरी बार के उपवास-काल में नहीं किया। इससे भी यही सिद्ध होता है कि एकत्रित विचारों के कारण जो भूख मालूम होती है, वह केवल विचारों और उनसे उत्पन्न होने वाले रोगों की माँग होती है। विचारों और रोगों की मात्रा जितनी ही कम होती जाती है भूठी भूख की माँग उतनी ही शान्त होती जाती है।

इसी आधार पर यह समझ लेना चाहिए कि उपवास काल में जिस निर्बलता को अनुभव किया जाता है, वह निर्बलता वास्तविक निर्बलता नहीं होती। यह निर्बलता भी भूख की तरह आरम्भ में मालूम होती है, किन्तु जो लोग उसको समझते हैं, वे लोग उसकी परवाह नहीं करते और अपने परिश्रम का कार्य एवं व्यायाम बराबर करते रहते हैं।

शिकागो की यूनीवर्सिटी में एक बार प्रोफेसरों और विद्यार्थियों ने एक सप्ताह का उपवास लेना निश्चित किया। युनीवर्सिटी के अधिकांश विद्यार्थी और प्रोफेसर उसमें सम्मिलित हुए। नियमानुसार उपवास आरम्भ किया गया और सात दिनों तक प्रसन्नता पूर्वक चलाकर सभी लोगों ने एक साथ उपवास भंग किया। उपवास के दिनों में सभी लोग शुद्ध जल में खूब स्नान करते थे। प्रातःकाल कई कई मील की वाकिंग होती और फिर यूनीवर्सिटी में बराबर शिक्षा का कार्यक्रम पूरा होता था।

पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि जो लोग अनाप-शनाप, उलटा-सीधा खा पीकर पेट-भर लिया करते हैं और उनके शरीर सदा विकारों से परिपूर्ण रहा करते हैं, उनको झूठी भूखें अधिक लगा करती हैं। यह बात परीक्षा से मालूम हुई है कि जिनके शरीर आरोग्य हैं उनकी अपेक्षा रोगी और विकारपूर्ण शरीर वाले मनुष्य भूख को अधिक अनुभव करते हैं। यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि उनकी भूख सच्ची भूख नहीं होती। उनके भीतर जो मल और विकार मौजूद हैं, भूख की यह माँग, उनकी माँग रहा करती है। क्योंकि शरीर में सचित और एकत्रित मल भी खूराक चाहते हैं।

दूसरी बात यह है कि जब एक-आध दिन भोजन नहीं मिलता तो आरोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा रोगी मनुष्य को अधिक भूख लगती है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि जब उनके शरीर को नीरोग बनाने के लिए उपवास दिये जाते हैं, तो वे दूसरे ही दिन से भूख के मारे चिल्लाने लगते हैं और कुछ ही समय बाद वे अपने शरीर में बहुत निर्बलता अनुभव करते हैं। यहाँ पर कुछ लोग तो यह भी अनुभव करते हैं कि यदि एक-आध दिन भोजन और न मिला तो निश्चय ही मृत्यु हो जायगी। ऐसे लोगो को बडी सावधानी के साथ उपवास दिये जाते हैं। किन्तु जैसे-ही-जैसे दिन आगे बढते जाते हैं, उनकी झूठी भूख मरती जाती है और उसके स्थान पर उनके हृदय में शान्ति पैदा होती जाती है।

यह भी देखा गया है कि जो लोग पहले उपवास काल में जितनी निर्बलता को अनुभव करते थे उतना अनुभव उन्होंने दूसरी वार के उपवास-काल मे नहीं किया। इससे भी यही सिद्ध होता है कि एकात्रत ावकारों के कारण जो भूख मालूम होती है, वह केवल विकारों और उनसे उत्पन्न होने वाले रोगो की मॉग होती है। विकारों और रोगों की मात्रा जितनी ही कम होती जाती है भूठी भूख की मॉग उतनी ही शान्त होती जाती है।

इसी आधार पर यह समझ लेना चाहिए कि उपवास काल में जिस निर्बलता को अनुभव किया जाता है, वह निर्बलता वास्तविक निर्बलता नहीं होती। यह निर्बलता भी भूख की तरह आरभ मे मालूम होती है, किन्तु जो लाग उसको समझते हैं वे लाग उसकी परवाह नहीं करते और अपने परिश्रम का कार्य एव व्यायाम बराबर करते रहते हैं।

शिकागो की यूनीवर्सिटी मे एक वार प्रोफेसरों और विद्यार्थियों ने एक सप्ताह का उपवास लेना निश्चत किया। युनीवर्सिटी के अधिकाश विद्यार्थी और प्रोफेसर उसमे सम्मिलित हुए। नियमानुसार उपवास आरम्भ किया गया और सात दिनो तक प्रसन्नता पूर्वक चलाकर सभी लोगो ने एक साथ उपवास भग किया। उपवास के दिनो में सभी लोग शुद्ध जल मे खूब स्नान करते थे। प्रात काल कई-कई मील की वाकिंग होती और फिर यूनीवर्सिटी में बराबर शिक्षा का कार्यक्रम पूरा होता था।

आरम्भ में दो-तीन दिनों तक कुछ लोगों को कष्ट हुआ। परन्तु एक बड़ी संख्या में लोग उपवास कर रहे थे, इस लिए लोगों ने सहन किया। उस उपवास-काल की जो रिपोर्ट प्रकाशित की गयी, उसमें बताया गया कि उपवास के दिनों में सभी लोगों के मन इतने अधिक प्रसन्न रहे जितने कि पहले कभी न रहते थे और सप्ताह के अन्त तक किसी ने अधिक कमजोरी का अनुभव नहीं किया।

इस स्थान पर यह कहा जा सकता है कि जब उपवास करने से निर्बलता नहीं आती तो फिर भोजन करने की जरूरत ही क्या है? सदा के लिए ही भोजन क्यों न छोड़ दिया जाय? वास्तव में ऐसा कहना अन्याय करना है। जिस घी के खाने से मनुष्य में शक्ति आती है, उसको आधा छटाँक, एक छटाँक खाने के बजाय, मनुष्य एक मन, दो मन घी एक दिन में खाकर शक्ति क्या नहीं पैदा कर लेता। जिस व्यायाम के द्वारा शरीर को बनाया जाता है, उस व्यायाम को घण्टे आध घण्टे के स्थान पर चौबीस घण्टे व्यायाम करके शरीर को एक साथ ही क्यों नहीं बना लिया जाता? अस्तु, इस प्रकार के प्रश्न और उत्तर, दोनों ही अनावश्यक हैं।

उपवास-काल में मानसिक श्रम

जब शारीरिक श्रम में उपवास से कोई बाधा नहीं पड़ती तो मानसिक श्रम के लिए उपवास काल बाधक कहाँ हो सकता! कुछ विद्वानों का कहना है कि उपवास का प्रभाव मानसिक

शक्तियों पर वही घटना जो प्रभाव डालती है। आग तपाने पर पैदा होता है। वास्तव में यह बात बहुत ही सत्य है। सोना आग में तपकर प्रखर प्रकाशित होता है। शारीरिक और प्रत्यक्ष उपवास-काल में शुद्ध और निर्मल बनता है। जो लोग अक्सर बराबर उपवास के प्रयोग करते रहे हैं। वे शारीरिक और मानसिक परिश्रम के काम कभी बंद नहीं करते। पहले की अपेक्षा, उपवास काल में भी काम करते रहते हैं।

एक प्राकृतिक चिकित्सक का कहना है कि किसी भी विषय में मानसिक शक्तियों की तन्मयता उपवास-काल में जिस प्रकार काम करती है उस प्रकार भोजन के किये जाने पर नहीं करती। किसने इस बात को लिखा? यह अमेरिका का एक प्रसिद्ध डाक्टर है और अपने अनेक प्रकार के प्रमाण देकर उसने इस बात को सिद्ध किया है। उसने यह भी लिखा है कि इस बात का अनुभव वही करेंगे जो उपवास के महत्व और लाभ को जानते हैं।

अंग्रेजी में एक पुस्तक है—फास्टिंग क्योर (Fasting Cure) उसके लेखक ने बताया है कि "मानसिक विकास के लिए उपवास से अधिक उपयोगी दूसरा कोई साधन नहीं हो सकता। इसीलिए संसार के प्रसिद्ध पुरुष और प्रतिभाशाली आदमी उपवास के पक्ष में पाये जाते हैं। कदाचित् ही कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति मिले जिसने उपवास के प्रयोगों से पृथक रहकर मानसिक शक्ति का अर्जन किया हो।"

जब इस प्रकार की बातों का तत्वावधान किया जाता है, तो इन बातों की सार्थकता स्पष्ट रूप में प्रकट होती है और बिना किसी भेद-भाव के इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि मानसिक विकास के लिए इन प्रयोगों की अत्यन्त आवश्यकता है।

जब इस प्रकार प

इन बातों की सार्थकता

किसी भेद-भाव के

है कि मानसिक वि

आवश्यकता है।

के प्रयोग

ज्ञान न होगा, तब तक हम

जा सकता।

उठाना चाहें उनका व

मिल सके, पढ़ें। और यदि

विद्वानों से मिलकर

के प्रयोग किए जा

कोई-सा भी

हैं। जब तक उनका ठीक-ठीक ज्ञान न होगा, तब तक उनसे अधिक लाभ नहीं उठाया जा सकता।

उपवास से जो लोग लाभ उठाना चाहें उनको चाहिए कि इस प्रकार का साहित्य जितना मिल सके, पढ़ें। और यदि सम्भव हो सके तो उपवास के अनुभवी विद्वानों से मिलकर लाभ उठावें। थोड़ा-सा सुनकर और जानकर यदि उपवास के प्रयोग किये जायँगे तो सम्भव है कि आगे चलकर और थोड़ी-सी भी प्रतिकूल अवस्था आने पर उससे विश्वास हट जाय। यद्यपि छोटे उपवासों से किसी प्रकार की हानि नहीं होती, फिर भी उपवास का प्रारम्भ और अंत नियमानुसार ही होना चाहिए। इसका उचित लाभ इसी दशा में हो सकता है। किन्तु जब लम्बे उपवास किये जाते हैं तो उनमें अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। इसका अधिक विस्तार अगले पन्नों में किया जायगा।

उपवास किस लिए करना चाहिए?

उपवास प्रारम्भ करने के पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि उपवास किस प्रकार किया जाता है और हम जो करने जारहे हैं, किस लिए करने जारहे हैं?

उपवास के सम्बन्ध में अब तक सभी प्रकार की बातें बतायी गयी हैं। उन सबको पढ़कर पहले अपनी आवश्यकता का निश्चय करना चाहिए और उसका निश्चय होजाने के बाद उपवास की तैयारी करना चाहिए। हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि उपवास

अत्यन्त लाभकारी शरीर के लिए एक क्रिया है जिसके द्वारा सभी प्रकार के लोग लाभ उठा सकते हैं।

शारीरिक और मानसिक भिन्न-भिन्न प्रकार की अवस्थाओं पर उपवास अपना प्रभाव डालता है। यह भी हम ऊपर बता चुके हैं कि उपवास के द्वारा रोगों का निराकरण, उपवास का एक साधारण कार्य है। किन्तु इसके द्वारा शारीरिक और मानसिक अंगों का संशोधन और उत्तेजन उसकी महत्वपूर्ण कार्यशीलता है। ऐसी दशा में उपवास के सम्बन्ध में सभी की आवश्यकतायें एक-सी नहीं हैं ऐसी दशा में उसकी कार्य-प्रणाली भी अनेक अंशों में विभिन्न हो सकती है।

किसको उपवास करना चाहिए ?

उपवास एक ऐसी क्रिया है जो बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, सबके लिए लाभकर सिद्ध होती है। फिर भी उपवास देने वाले का यह कार्य है कि जिसको उपवास दिया जाय, उसकी आवश्यकता और अवस्था पर विचार कर लिया जाय। इतना विचार करने के बाद ही उपवास देने वाला सोच सकता है कि किस प्रकार का उपवास देने की आवश्यकता है। उपवास तो कोई भी ले सकता है किन्तु भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में, विभिन्न प्रकार के उपवास दिये जाते हैं। जो लोग इस बात का विचार न करेंगे, वे सहसा हानि उठावेंगे।

निम्नलिखित प्रतिकूलता के अनुसार उपवास की अलग-अलग व्यवस्थायें की जानी चाहिए—

१—बच्चों के लिए उपवास।

२—सयाने लड़कों के लिए उपवास।

३—स्त्रियों के लिए उपवास।

४—स्वस्थ आदमी के लिए उपवास।

५—बूढ़े और निर्बल आदमियों के लिए उपवास।

६—साधारण रोगों और सक्रामक रोगों में उपवास।

७—अत्यधिक निर्बल रोगी के लिए उपवास।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न अवस्था के मनुष्यों में उपवास विभिन्न रूप से व्यवस्थायें काम करती हैं—

१—छोटे-से छोटे बच्चों को भी उपवास दिये जाते हैं। या तक कि एक-एक वर्ष के बच्चे को भी एक-एक सप्ताह का उपवा दिया गया है और उससे बराबर लाभ हुआ है। परन्तु उपवा के दिनों का निश्चय प्रत्येक बालक के साथ एक समान नहीं किय जा सकता।

छोटे बच्चों मे जो उपवास दिये जाते हैं, वे रोग-निवारण के लिए ही दिये जाते। जो रोग जैसा होता है, वैसा ही वह उपवास चाहता है। साधारण कष्ट मे एक दिन का, दो दिन का उपवास ही पर्याप्त होता है जैसे, साधारण ज्वर, कब्ज, पेट पीड़ा आदि। किन्तु यही रोग यदि कुछ अरसे से होते हैं तो फिर उपवास के समय की मात्रा बढ़ा देनी पड़ती है और यदि छोटे बच्चा में कोई दीर्घकालीन रोग होता है तो वह रोग बिना लम्बे उपावस के नहीं दूर होता। अज्ञानता वश माता-पिता समझा करते हैं कि

बड़े बच्चे बिना खाये पिये नहीं रह सकते, परन्तु उनका यह केवल भ्रम होता है। लम्बा उपवास देने के पूर्व किसी अनुभवी से सम्मति ले लेना अथवा उसके संरक्षण में उपवास देना अधिक आवश्यक होता है।

२—सयाने बच्चों के लिए उपवास देने में विशेष चिन्ता की बात नहीं होती। परन्तु उनकी भी अवस्था और रोग की दशा को देख कर ही उपवास देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

३—स्त्रियाँ स्वभावतः सुकुमार होती हैं। इस लिए पुरुषों की अपेक्षा कठोरता कम सहन कर सकती हैं। विशेषकर जब वे गर्भवती होती हैं, उन दिनों में बहुत सम्भाल कर उपवास देने की व्यवस्था की जाती है।

४—स्वस्थ और तन्दुरुस्त आदमी सहज ही उपवास कर सकते हैं। उपवास से कभी हानि नहीं होती, किन्तु पुराने रोगों में अथवा असाध्य व्याधियों में लम्बे उपवास की आवश्यकता पड़ती है।

५—बूढ़े और निर्बल आदमियों को भी उपवास दिये जाते हैं। परन्तु इस बात का स्मरण रखा जाता है कि उनके शरीर की शक्तियाँ क्षीणता पर होती हैं। विशेषकर जब बूढ़े आदमियों को कोई जीर्ण बीमारी लग जाती है तो उनकी दशा को देखकर उपवास की व्यवस्था करनी पड़ती है।

६—उपवास की व्यवस्था रोगी की अवस्था पर निर्भर है। साधारण रोग दो-दो चार-चार दिनों के ही उपवास से ठीक हो

१६—छोटे और बड़े उपवास

दूध पीने वाले बच्चों से लेकर बूढ़ों तक—सबको उपवास दिये जासकते हैं और आवश्यकतानुसार उनसे लाभ उठाया जासकता है। परन्तु सब का एक समान उपवास नहीं दिया जासकता। जैसा कि पिछले पृष्ठों में लिखा गया है, शारीरिक शक्ति अवस्था और रोग की आवश्यकता को देखकर उपवास का निश्चय करना चाहिए।

यह तो सभी जानते हैं कि उपयोगी से-उपयोगी वस्तु भी, अनुचित प्रयोग करने से हानिकर हो जाती है। कुछ पदार्थ हमारे लिए अमृतमय हैं, परन्तु यदि उनको व्यवहार में लाने का रास्ता गलत है तो वे हमारे लिए अमृत न रहेंगे और यह भी निश्चय है कि उनका गुण विषपूर्ण हो जायगा।

उपवास के सम्बन्ध में भी यही बात है। उपवास बहुत अच्छी चीज है। उससे सभी प्रकार के लाभ उठाये जासकते हैं, लेकिन यदि उसके प्रयोग गलत किये जायँगे और अनावश्यक उसका व्यवहार होगा तो निश्चित् उससे हानि होसकती है। या तो उपवास के प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक और सरल हैं, जिनको कोई भी आदमी व्यवहार में लासकता है। उसकी व्यावहारिकता इतनी स्वाभाविक है कि उससे पशु-पक्षी और जानवर लाभ उठाते हैं।

उपवास का सम्बन्ध हमारी प्रकृति के साथ है। यदि हम न प्रकृति का अनुसरण कर वा भी हम भूल नहीं कर सकते। की आवश्यकता और अनावश्यकता हमको अपनी प्रकृति से मालूम हो जाती है। जहाँ पर मनुष्य प्रकृति के प्रति उपेक्षा व्यवहार करता है और अपनी समझ से काम लेता है, ऐसी ा में क्षति स्वाभाविक है।

किस प्रकार का उपवास दिया जाय ?

आवश्यकता के अनुसार उपवास की व्यवस्था की जाती है। नको इन बातों का ज्ञान हो, वे इनका विवेचन कर सकते हैं ौर जो अधिक जानकारी नहीं रखते, उनको चाहिए कि किसी ानकार अथवा अनुभवी से सहायता लेलें। उपवासों की यवस्था अनेक रूप में होती है—

(१) सरल उपवास।

(२) छोटा उपवास।

(३) कड़ा उपवास।

(४) लम्बा उपवास।

(५) अर्द्धोपवास।

मामूली दशा में सरल उपवास किये जाते हैं, जिनमें एक-दो दिन को खाना रोक दिया जाता है अथवा साधारण फल या फलों का रस दिया जाता है। इतने ही से साधारण अवस्था में लाभ होजाता है।

छोटे उपवासो में तीन दिन, चार दिन, छ दिन के उपवा
माने जाते हैं। एक सप्ताह तक का उपवास, छोटा उपवास कह
लाता है। रोग की दशा और शारीरिक अवस्था से उपवास
दिनों का सम्बन्ध है।

कड़े उपवास मे, उपवास-सम्बन्धी अनेक नियमो से का
लिया जाता है और इसलिए कि यदि उनमे कठोरता का व्यवहा
न किया जाय तो कठिन अथवा असाध्य रोगों में जल्दी का
प्रभाव नहीं पडता।

लम्बे उपवास पुराने रोगो मे किये जाते हैं। इनके लिए किसी
संख्या का निश्चय नहीं है। यह हफ्ते से ऊपर, दस दिन पन्द्रह
दिन, बीस दिन, पचीस दिन, तीस दिन और चालीस दिन तक
के उपवास भी किये जाते हैं। यही नहीं, इससे भी अधिक दिनों
तक के उपवास करने वाले आदमी देखे गये हैं और उन्होंने इस
दीर्घकालीन उपवास के द्वारा पूर्णरूप से लाभ उठाया है।

मामूली शिकायतों में अर्द्धोपवास किये जाते हैं। अर्द्धोपवास
में चौबीस घण्टे मे एक बार खाना दिया जाता है और वह भी
अत्यन्त प्राकृतिक और पाच्य। कभी-कभी एक बार या दो बार
फलों का रस ही दिया जाता है।

किस प्रकार के उपवास मे क्या-क्या व्यवस्था की जाती है,
इसका विस्तार अलग अलग आगामी उपवास के पन्नों में किया
जायगा। यहाँ पर केवल उपवास करने वालों का ध्यान आकर्षित
किया जाता है जिसके अनुसार उपवास करनेवाला को इस

बात का ज्ञान होगा कि उपवास आवश्यकता के विरुद्ध न किये जाँय।

उपवास कितने दिनों का दिया जासकता है?

या तो इसके समझने और समझाने में कुछ कठिनाई सी मालूम पड़ती है कि उपवास कितने दिनों तक का दिया जाय और किस प्रकार इसका निश्चय किया जाय। सब से पहली बात यह है कि सभी मनुष्य बराबर उपवास नहीं कर सकते और यह भी नहीं होता कि किसी मनुष्य में उपवास करने की शक्ति होती हो।

उपवास वहीं तक किया जासकता है जहाँ तक उसकी आवश्यकता होती है और आवश्यकता का सम्बन्ध शरीर के भीतर सचित मल और विकार से है। यदि यह मल और विकार शरीर में नहीं है तो तीन दिनों का उपवास भी बहुत कठिन हो जाता है और यदि शरीर में मल का सचय है तो सरलता पूर्वक दस दिन, बीस दिन, पच्चीस दिन और इससे भी अधिक उपवास किये जासकते हैं।

उपवास के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक प्रकार की बातें बताया है। डाक्टर मैकफेडन ने इस मौके के लिए बताया है कि "जब तक स्वाभाविक भूख जाग्रत न हो, तब तक उपवास को तोड़ना न चाहिए। उपवास की अवधि के निश्चय करने का यही एक मार्ग है और इससे अधिक उपवास करना भी न चाहिए नहीं तो उससे शरीर को क्षति पहुँचती है।"

डाक्टर मैकफेडन के कथनानुसार यह प्रश्न पैदा होता है कि साधारण आदमी को किस प्रकार इस बात का ज्ञान हो कि स्वाभाविक भूख के पैदा होने के लक्षण क्या हैं ? होता यह है कि रोगी और विकारपूर्ण दशा में भी आदमी भूख के मारे चिल्लाया करता है फिर इसकी स्वाभाविकता और अस्वाभाविकता का पता कैसे चलाया जाय ?

उपवास चिकित्सा के विद्वान मि० हरबर्ट शेल्टन ने लिखा है—मैंने बहुत बड़ी संख्या में उपवास किये हैं और लम्बे उपवासों में उन्चास दिन तक का उपवास किया है। परन्तु मैंने किसी प्रकार की क्षति का अनुभव नहीं किया और न मुझे अपने मित्रों के द्वारा ही इस बात का कुछ अनुभव हुआ। शरीर के विशुद्ध हो जाने पर प्रसन्नता पूर्वक उपवास को भंग किया है और अत्यन्त स्वाभाविक रूप से उपवास के पश्चात् कुछ दिन काटे हैं।

डा० डीवे का कहना है कि शरीर विज्ञान के अनुसार भूखे रहकर मृत्यु पाना कठिन नहीं, असम्भव है। अपनी ओर से कोई भी आदमी भूखा नहीं रह सकता। भूख और चीज है, उपवास और चीज है। भूख के कारण प्राण-शक्ति का ह्रास होता है और उपवास के द्वारा प्राण-शक्ति को जीवन प्राप्त होता है। जो लोग भूख और उपवास को एक ही समझते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं।

इस प्रकार जितने ही बड़े बड़े विद्वानों की सम्मतियों का अनुशीलन किया जाता है। उतना ही इस समस्या का स्पष्टीकरण

होता है और सभी की बातों का यह साराश निकलता है कि उपवास शरीर से मल और विकार के निकालने का कार्य करत हैं। जब तक मल और विकार पूर्णरूप से निकल नहीं जाते तब तक क्षुधा स्वभावत बन्द हो जाती है। इसी दशा में उपवास किया जासकता है। यदि स्वाभाविक रूप से भूख लगी हुई न हो तो महीनों के लम्बे उपवासों की बात तो दूर, चार पाँच दिनों तक भूखे रहना भी कठिन हो जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि सरलतापूर्वक भूख वहीं रोकी जासकती है, जहा शरीर विकारपूर्ण होता है। अब साराश यह निकलता है कि जो मनुष्य स्वाभाविक रूप स जितने दिनों का उपवास कर सके, उतन दिनों का उसे करना चाहिए। उपवास के दिनों की यही एक तौल हो सकती है। शरीर के निर्विकार होते ही स्वाभाविक भूख पदा होती है और उसके पैदा होते ही उपवास भग कर देना चाहिए।

परन्तु इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि उपवास आरभ करके भूख की प्रतीक्षा करना और उसी के आधार पर उपवास तोड देना, बुद्धिमानी की बात न होगी। यद्यपि कभी आवश्यकता पडने पर ऐसा किया जासकता है, पर तु प्रत्येक उपव स का यह नियम न होना चाहिए। एक अनुभवी को पहले स ही इस बात को निश्चय कर लेना चाहिए कि किस आदमी को कितने दिनों का और किस प्रकार का उपवास दिया जासकता है। उसी निश्चय के अनुसार प्रसन्नता पूर्वक उपवास की अवधि पूरी करनी चाहिए।

सच्ची और झूठी भूख की पहचान

वास्तव में सच्ची और झूठी भूख की पहचान बताना यदि असम्भव नहीं तो कुछ कठिन अवश्य है। परन्तु जो इसके अनुभव करने का अभ्यास करेगा, उसको सरलता पूर्वक इसका ज्ञान हो सकता है। उपवास के सम्बन्ध में बड़े-से-बड़े विद्वानों के लखों को पढने से इतना ही मालूम होता है कि शरीर के निर्विकार हो जाने और नष्ट हुई क्षुधा के फिर उत्पन्न हो जाने तक उपवास की अवधि होनी चाहिए। परन्तु हमारी समझ में जाग्रत होने वाली क्षुधा का कुछ स्पष्ट विवरण आवश्यक मालूम होता है।

यह बात ठीक है कि मन के सन्तप्त होने अथवा रोग उत्पन्न होने पर स्वाभाविक क्षुधा नष्ट हो जाती है। किन्तु इस दशा में भी मनुष्य जिस भाव को अनुभव करता है, वह झूठी भूख होती है। इस सच्ची और झूठी भूख की विवेचना क्या है, इसको संक्षेप में यहाँ कुछ बताने की हम चेष्टा करेंगे।

मनुष्य खाने-पीने का ऐसा आदी होगया है कि भूख हो या न हो, भोजन करने का समय आने पर अपने आप भूख का अनुभव होने लगता है। इसका कारण मनुष्य की आदत है। मान लिया जाय कि दोपहर को एक आदमी ने जो खाना खाया है उसका पाचन-कार्य ठीक-ठीक नहीं हुआ, फिर भी वह सायंकाल भोजन के समय भोजन करने जाता है। इसलिए नहीं कि उसको भूख लगी है, बल्कि इसलिए कि भोजन का समय

आने पर भोजन कर लेना वह अपना एक कार्य समझता है। इसको झूठी भूख कहते हैं।

भूख और चीज है, आदत और चीज है, प्राय [illegible] होता है कि भोजन का समय आने के पूर्व, कभी कभी घण्टा पहले हम जानते हैं कि हमारे पेट में कुछ नहीं है। भूख की आवश्यकता अनुभव होती है, किन्तु भोजन का समय न [illegible] के कारण उसका अधिक ख्याल नहीं होता और आसानी से [illegible] घण्टा समय कट जाता है। इससे भी मालूम होता है कि भूख भी अपना भोजन करने के समय का प्रभाव हमारे ऊपर अधिक पड़ता है। इस पर यह भी कहा जा सकता है कि [illegible] लोग जो भोजन करते हैं, वह भूख के लिए तो कम होता है किन्तु भोजन करने के समय को पालने के लिए अधिक होता है।

असली भूख और नकली भूख का अनुभव [illegible] जानना है। जिस प्रकार शरीर में [illegible] पीड़ा [illegible] होती हैं, एक तो थकावट से और दूसरी रोग से। [illegible] होती है। थकावट की पीड़ा कुछ और [illegible] है और बीमारी की और। पीड़ा [illegible] कहलाती है। मनुष्य [illegible] आसानी के साथ समझता है। असली भूख और नकली भूख में भी इसी प्रकार का अन्तर है, [illegible] करने पर अनुभव कर सकता है। [illegible] पूर्वक रोकी जा सकती है, किन्तु स्वाभाविक भूख [illegible] नहीं रोकी जा सकती।

भूख और उपवास की आवश्यकता को समझने म सहज ही लोगों से भूल हो सकती है। इसका यही कारण है कि मनुष्य खाने-पीने का बहुत बुरी तरह से अभ्यासी होगया है। जीवित रहने के लिए भोजन किया जाता है परन्तु ऐसे आदमियों की संख्या अधिक है जो भोजन के लिए जीवित रहना चाहते हैं। भोजन भूख के लिए होता है, भोजन के लिए भूख नहीं होती।

उपवास-काल में कभी विरुद्ध लक्षण का पैदा हो सकते हैं, जब तक कि स्वाभाविकता के विरुद्ध न चला जाय अथवा अधिकता न की जाय।

नाड़ी की गति

मनुष्य के शरीर का ज्ञान साधारण तौर से नाड़ी के द्वारा होता है। नाड़ी की स्वाभाविक गति नीरोग शरीर का परिचय देती है। न तो उसका मंद होना अच्छा है और न तीव्र होना। नाड़ी की मन्दता, निर्बलता के कारण पैदा होती है और उसकी तीव्रता रोगों के कारण। उपवास के दिनों में नाड़ी की गति में कई प्रकार के अन्तर हुआ करते हैं। कभी कभी उसकी चाल बहुत धीमी होजाती है और कभी तेज होजाती है।

बड़े उपवासों में निर्बलता का पैदा होना स्वाभाविक है। निर्बलता के कारण नाड़ी की गति धीमी होजाती है। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि मन की कमजोरी का प्रभाव नाड़ी की गति में पड़ता है। किसी-किसी मनुष्य का मन बहुत निर्बल होता है। उपवास आरंभ करते ही घबराहट पैदा होती है और दो-चार दिनों में ही भय बढ़ जाता है। इस भय को मानसिक निर्बलता के कारण वह अधिक अनुभव करता है। इसका फल यह होता है कि शारीरिक निर्बलता अधिक न पैदा होने पर भी नाड़ी की गति बहुत मंद होजाती है। ऐसी दशा में रोगी को सन्ताप देने की आवश्यकता होती है। किन्तु यदि लम्बे उपवास में वास्तविक निर्बलता पैदा होरही हो तो यह दशा उपेक्षणीय नहीं होती।

इस बात को समझ लेना चाहिए कि यदि वास्तव में निर्बलता बढ़ रही है तो यह निश्चय है कि उपवास अपना काम समाप्त कर चुके हैं। इसलिए सोच विचार कर सावधानी के साथ उपवास तोड़ने के बाद का कार्यक्रम पूरा करना चाहिए।

निर्बलता का कारण

साधारण लोग समझते हैं कि जब इतने अधिक दिनों तक हम खायेंगे नहीं तो फिर जीवित कैसे रहेंगे? उनका यह सोचना उनके लिए स्वाभाविक है। ऐसी दशा में ऐसे व्यक्तियों को समझ लेना चाहिए कि विकारपूर्ण शरीर में अथवा रोगी दशा में मनुष्य जो कुछ खाता है, उससे उसके शरीर को कुछ लाभ नहीं पहुँचता, बल्कि इसके विरुद्ध शरीर में मल की वृद्धि होती है और रोग की आयु बढ़ती है। जब तक शरीर में उत्पन्न विष निकल न जायगा, तब तक उसके शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता नहीं है। इसलिए प्रकृति की ओर से भोजन माँगने वाली भूख नष्ट हो गयी है।

फिर भी निर्बलता का अनुभव होना स्वाभाविक है। परन्तु इस बात पर विश्वास रखना चाहिए कि यह अनुभव बहुत अंशों में झूठा हुआ करता है। उपवास के दिनों में भोजन का कार्य तो बंद रहता है, इसलिए जो मल एकत्रित रहता है, जठराग्नि के द्वारा उसके पचने का कार्य आरम्भ हो जाता है और संचित मल धीरे-धीरे निकलने लगता है। इन दिनों में एक प्रकार की अस्वा-

भाविकता-सी पैदा होती है और जो अस्वाभाविकता पैदा होती है वह हमारे अभ्यासी जीवन का परिणाम स्वरूप है।

कारण यह है कि मनुष्य नित्य भोजन करने का अभ्यासी हो गया है। इसलिए जब इस अभ्यास के विरुद्ध चलना पड़ता है तो सहज ही उसे अस्वाभाविकता मालूम होती है। किंतु यदि मनुष्य को इस बात का ज्ञान होता है कि उपवास क्या है और उसके द्वारा हमारे शरीर में किस प्रकार का रचना कार्य होता है तो उसको अस्वाभाविकता के स्थान पर प्रसन्नता का अनुभव होता है।

लम्बे उपवास में, उपवास की आवश्यकतानुसार स्वाभाविक निर्बलता न पैदा होनी चाहिए। फिर भी जो दुर्बलता मालूम होती है उसका कारण यह है कि शरीर में अपवित्र रक्त और मांस जो बन जाता है, उपवास के दिनों में वह भी पचने लगता है और बराबर पचा करता है। इस प्रकार जो रक्त और मांस शरीर के लिए उपयोगी नहीं होता, वह भी क्षीण होने लगता है। उसके क्षीण होने के कारण मनुष्य देखने-सुनने में दुर्बल मालूम होने लगता है। यद्यपि यह दुर्बलता वास्तविक दुर्बलता नहीं होती। परन्तु बहुत अंशों में इस प्रकार उत्पन्न हुई क्षीणता को ही लोग दुर्बलता समझने लगते हैं और घबराने लगते हैं। ऐसी दशा में यदि मनुष्य उसके समझने की चेष्टा करे तो उसको सच्ची जानकारी पैदा हो सकती है और उससे घबराहट भी दूर हो सकती है।

शरीर में उत्ताप और पीड़ा

उपवास के साथ-साथ शरीर के ताप आदि में कुछ वृद्धि होती है। लगातार कई दिन तक भोजन ग्रहण न करने से ही अनेक लोगों में [illegible] [illegible] [illegible] का अनुभव करके वे नाहक भयभीत हो जाते हैं। कुछ लोग तो समझने लगते हैं कि भूख के मारे शरीर गरम हो उठा है, सिर और हाथ-पैरों में दर्द होती है।

लेकिन ऐसी बात नहीं होती। भूख के मारे शरीर में गर्मी नहीं आई और न उसके कारण पीड़ा ही पैदा हुई। कारण यह है कि जब भोजन रोक दिया जाता है और जठराग्नि में पचने के लिए भोजन नहीं पहुँचता तो एकत्रित मल पचने लगता है और इस प्रकार संचित मल तथा फारेन मैटर के निकलने से शरीर में भीतर की गर्मी ऊपर आजाती है इसीके कारण शरीर उत्तप्त और पीड़ित होने लगता है। यदि अवस्था [illegible] से अधिक होती है और जब मल छूट जाता है तो उस दशा में परिवर्तन होने लगता है। जितना ही फारेन मैटर निकलता जाता है, वह उत्ताप और पीड़ा उतनी ही कम होती जाती है।

इसको शान्त करने के लिए शीतल जल का सेवन बहुत आवश्यक होता है और इसके साथ साथ उपवास के साहित्य का अध्ययन और अनुशीलन सहायक होता है, जो उपवास के सम्बन्ध में ज्ञान और जानकारी उत्पन्न करता है।

छोटे उपवास के बाद बड़े उपवास

ऊपर यह बात लिखी जा चुकी है कि पुराने और असा रोगों में लम्बे उपवास के बिना लाभ नहीं होता। लेकिन जिस कभी उपवास नहीं किया, उसको अकस्मात् लम्बा उपवास, क्व चित् सहन न होगा अथवा अनेक प्रकार की घबराहट पै करेगा। इसलिए यह आवश्यक होता है कि लम्बा उपवास दे के पहले, एक, दो या तीन छोटे उपवास दिये जाँय। ऐसा कर से रोगी निर्विकार तो न होजायगा, किन्तु लम्बा उपवास कर की शक्ति और साहस पैदा होजायगा इसके उपरान्त लम्ब उपवास दिया जाना चाहिए और दिया जाना चाहिए आवश्यक को देखकर।

कभी-कभी लोग ऐसा करते हैं कि किसी असाध्य रोगी को, लम्बा उपवास दे देते हैं और यदि वह, उनके लिए अभ्यासी नहा है, अथवा उसके लिए उपवास बिल्कुल नई चीज है तो कुछ ही आगे चलकर रोगी घबराने लगता है और किसी-न किसी तरह उपवास को भंग करने की चेष्टा करता है।

अनिद्रा और अशान्ति

उपवास-काल में अनिद्रा और अशान्ति उत्पन्न होती है, नींद न आने के कारण उपवास करने वालों को एक नया कष्ट झेलना पड़ता है। इस लिए भी कुछ घबराहट पैदा हो जाती है।

यद्यपि नींद न आने पर किसी प्रकार की घबराहट न होनी चाहिए, किन्तु मनुष्य अपनी अनेक बातों में ऐसा अभ्यासी होगया है कि उसकी आवश्यकता हो या न हो मनुष्य उसकी आवश्यकता का अनुभव करता है। नींद के लिए भी यही बात है। हम ऊपर बता चुके हैं कि भोजन न करने के कारण एक अस्वाभाविकता-सी मालूम होती है। यह अस्वाभाविकता ही, शरीर के लिए अशान्ति हो जाती है। किसी भी प्रकार की अशान्ति में नींद का न आना स्वाभाविक है।

एक बात और आती है। उपवास-काल में लोग परिश्रम नहीं करते। कुछ लोग तो परिश्रम इस लिए नहीं करते कि उनको शरीर में निर्बलता का अनुभव होता है। और कुछ लोग तो सिद्धान्त रूप में ही परिश्रम नहीं करते। उनका कहना यह है कि उपवास-काल में यों ही शक्ति का ह्रास होने लगता है इसीलिए जो शक्ति शरीर में शेष रह जाय, उसका उपयोग मल निकालने के काम में ही अधिक होना चाहिए।

परन्तु हम उसके पक्ष में नहीं हैं। और जहाँ तक उपवास के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार पढ़ने और जानने को मिल हैं, उनसे मालूम होता कि उपवास-काल में बराबर परिश्रम और व्यायाम करना चाहिए। इससे शरीर को हानि के बजाय, लाभ ही होता है। हाँ, तो यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि जो लोग व्यायाम अथवा किसी अन्य प्रकार का परिश्रम उपवास काल में

नहीं करते, उनको अनिद्रा का कष्ट अधिक होता है। क्योंकि नींद तो शरीर की इन्द्रियों के शैथिल्य से आती है।

अनिद्रा और अशान्ति के निवारण के लिए शीतल जल पीने का क्रम अधिक करना चाहिए और यदि सम्भव हो सके सोने से पूर्व स्नान कर लिया जाय। यदि ठंढे दिन हों और जाड़ा पड़ रहा हो तो बन्द कमरे में, गर्म पानी से नहाया जा सकता है। ऐसा करने से नींद आ जायगी और कोई कष्ट न होगा।

उपवास के दिनों में शीतल जल पीने का काम अवश्य होना चाहिए, इससे कई लाभ होते हैं, एक तो उपवास करने से जो गर्मी चढती है, उसमें शान्ति पहुँचती है और पेट में अवस्थित मल धुलकर, आसानी के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है। कुछ लोग गर्म जल पीने की सम्मति देते हैं, लेकिन हमारी समझ में गर्म जल की अपेक्षा, शीतल जल अधिक उपयोगी है और उपयोगी है प्रत्येक ऋतु में, चाहे जाड़ा हो चाहे गर्मी। शीतल जल बराबर पीना चाहिए, उपवास के दिनों में तो एक-एक घंटे पर जल पीने में भूल न करनी चाहिए।

१८—उपवास के साथ अन्य प्रयोग

शरीर और मन को निर्विकार तथा नीरोग बनाने के लिए उपवास के प्रयोग किये जाते हैं। इन प्रयोगों के साथ-साथ कुछ अन्य प्रयोग भी सम्मिलित हैं। जिनके सम्बन्ध में यहाँ पर प्रकाश डालना है।

किसी भी औषधि के साथ अनुपान का संयोग होता है। आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियों में तो खास तौर पर अनुपान का मिश्रण किया जाता है। अंग्रेजी दवाओं में इतना तो नहीं किन्तु फिर भी अनुपान का प्रयोग होता है। जो चीजें अनुपान में दी जाती हैं, उनसे औषधियों का प्रभाव अधिक हो जाता है।

उपवास के सम्बन्ध में भी हमारी इसी प्रकार की धारणा है। अन्य जो प्रयोग उपवास के प्रयोगों की न केवल साधारण सहायता करते हैं, किन्तु उन्हें शीघ्र-से शीघ्र सफल बनाते हैं। हमारे निकट उनका भी महत्व है और उनके संयोग से लाभ उठाना हमारा कर्त्तव्य है।

जल के प्रयोग

यों तो जल के प्रयोग अथवा जल चिकित्सा शरीर को आरोग्य करने के लिए स्वतन्त्र रूप से काम करती है, किन्तु यहाँ पर हम उसके उतने ही अंश का उपयोग करेंगे, जितना उपवास के साथ आवश्यक है।

हमारे शरीर के लिए जल एक महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। इसमें प्राण-शक्ति देने का गुण है और साथ ही नीरोग बनाने के लिए उसका चमत्कार प्रसिद्ध है। यों तो जल के प्रयोग जीवन भर हमारे लिए आवश्यक हैं, परन्तु उपवास-काल में विशेष रूप से उसके उपयोग की आवश्यकता है। निम्नलिखित बातों में जल के प्रयोग से लाभ उठाना चाहिए—

१—शीतल जल के पीने का प्रयोग।

२—ठण्डे जल में नहाने का प्रयोग।

३—हिप-बाथ या कटि-स्नान का प्रयोग।

उपरोक्त तीन तरीकों से जल का प्रयोग हमें करना चाहिए। इन प्रयोगों का विस्तार इस प्रकार है—

१—उपवास के दिनों में अधिक पानी पीने की कोशिश करनी चाहिए। उसका कोई परिमाण नहीं है। और कम पीने से हानि हो सकती है, किन्तु अधिक पीने से हानि नहीं हो सकती। ठण्डे दिनों में भी, जब प्यास नहीं लगती है, तो थोड़ी थोड़ी देर में पानी पीना चाहिए। साधारण तरीके से घण्टे में एक बार एक गिलास जल पीना आवश्यक होता है। जल, शुद्ध, शीतल और ताजा होना चाहिए। इस प्रकार का जल सदा स्वास्थ्य और सौन्दर्य की वृद्धि करता है।

२—शीतल जल में स्नान करना बहुत ही लाभकारी है। लोगों में गर्म पानी में स्नान करने की एक मनोवृत्ति पायी जाती है जो यदि हानिकारक नहीं है तो अधिक लाभकर भी नहीं है।

गर्मी से लेकर सरदी तक—किसी भी मौसम में शीतल जल का स्नान आरोग्य देने वाला होता है। किन्तु निर्बल रोगियों को छोड़कर, कुनकुने पानी से लेकर—कुँए तक के शीतल जल में नित्य स्नान करना चाहिए। नहाने के लिए यदि बहती हुई नदी का स्वच्छ जल मिल सकता हो और भी अच्छा है।

२—हिप बाथ अथवा कटि-स्नान। यह उपवास का महत्वपूर्ण प्रयोग है। इसका नियम यह है कि टब में शीतल जल भरकर नंगे होकर इस प्रकार बैठना चाहिए कि पेट वाली नाभी से लेकर जाँघों से नीचे तक का भाग पानी में डूब जाय। इस प्रकार टब में बैठकर मुलायम कपड़े से पेट को दाहिनी ओर से बाईं ओर को धीरे-धीरे मलना चाहिए।

उपवास के दिनों में कम-से-कम एक बार इसका अवश्य प्रयोग करना चाहिए। पन्द्रह मिनट से लेकर, आधे घण्टे तक हिप-बाथ लिया जा सकता है। यदि अधिक सरदी के दिन हों तो पन्द्रह बीस मिनट ही काफी होगा।

उपवास के दिनों में विशेष कर जब अनिद्रा और अशान्ति की वृद्धि होती है और शरीर में उत्ताप एवं पीड़ा उत्पन्न होती है, उन दिनों में एक बार अथवा दो बार हिप-बाथ लेने से बड़ी शान्ति मिलती है और रात में नींद आती है।

एनीमा का प्रयोग

उपवास के दिनों में एनीमा का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। यदि एनीमा का प्रयोग न किया जाय तो भी काम चल सकता

है। किन्तु पेट म रुका हुआ और सूखा हुआ मल निकालने में एनीमा के द्वारा आसानी होती है। यदि इसका प्रयोग न किया जाय तो भी वह निकल सकता है किन्तु अधिक अरसा लगता है।

एनीमा के द्वारा गुदा मार्ग से साबुन मिश्रित गर्म जल अँतड़ियों और पेट के दूसरे भागों में पहुँचाया जाता है। यह जल उन स्थानों में रुके हुए और सूखे हुए मल को धोकर बाहर निकालता है। जब उपवास आरम्भ किया जाता है तो कई दिन तक नित्य एनीमा का प्रयोग किया जाता है। जब कइ दिनों तक लगातार एनीमा का प्रयोग करना होता है तो फिर खाली गर्म जल का एनीमा दिया जाता है। पेट के भीतर का रुका हुआ मल इसके द्वारा बड़ी सरलता के साथ निकाला जाता है।

मिट्टी के प्रयोग

प्राकृतिक चिकित्सा म मिट्टी के द्वारा रोगों का जो प्रतिकार होता है, उसका बड़ा महत्व है। प्राचीन काल मे यद्यपि मिट्टी के प्रयोगों के सम्बन्ध मे कोई वैज्ञानिक अनुसधान न था, परन्तु समाज में शरीर की भिन्न भिन्न व्याधियों में मिट्टी के प्रयोगों का प्रचलन था। उस प्रचार का अस्तित्व अब भी समाज म पाया जाता है, किन्तु बहुत कम। औषधियों के प्रचार ने मिट्टी के प्रयोगों का नाम ही मिटा दिया था, परन्तु समाज की स्वाभाविक जाग्रति ने उसके महत्व को फिर पहचाना और जिस मिट्टी के प्रयोग, असभ्य तथा अशिक्षित जातियों मे पाये जाते थे, उस मिट्टी के प्रयोगों का महत्व ससार की शिक्षित और सभ्य जातियों

आरंभ हुआ। आज दशा यह है कि संसार के प्रत्येक देश में जो समुदाय अधिक शिक्षित और सभ्य माना जाता है, उसमें जल, मिट्टी और उपवास के प्रयोगों का विस्तार दिन-पर-दिन बढ़ रहा है और इस बढ़ती हुई वृद्धि ने ओषधियों का क्षेत्र बहुत संकुचित कर डाला है।

यों तो मिट्टी के प्रयोग सभी प्रकार के रोगों में अपना आश्चर्यमय प्रभाव रखते हैं परन्तु उन सबके संबंध में यहाँ लिखने के लिए स्थान नहीं है। अतएव यहाँ पर मिट्टी के प्रयोगों की उतनी ही चर्चा की जायगी, जितनी कि उपवास के प्रयोगों के साथ साथ आवश्यक है।

सब से पहले यह जान लेने की आवश्यकता है कि मिट्टी में रोगों के विष को चूस लेने की शक्ति होती है। इसी आधार पर मिट्टी के सम्बन्ध में बड़े-बड़े विद्वानों ने अनेक प्रकार की खोज की है और उसके फलस्वरूप आज मिट्टी के द्वारा अनेक प्रकार के रोग निवारण किए जाते हैं।

जिस मिट्टी का प्रयोग किया जाता है वह मिट्टी एक विशेष प्रकार की होती है और सर्वत्र पायी जाती है। नदी-तालाब या किसी बड़े जलाशय के किनारे अथवा उसके निकट, काले या भूरे रंग की एक चिकनी मिट्टी होती है। जिसमें किसी प्रकार का कूड़ा कर्कट नहीं होता। उसी का प्रयोग किया जाता है। प्रयोग करने का तरीका यह है कि इस प्रकार की मिट्टी के बड़े बड़े टुकड़ों को कूटकर और महीन चलनी से छानकर रख लिया जाता

है। उसके बाद मिट्टी के किसी कच्चे बर्तन में उस छनी हुई को छोड़कर अधिक-से-अधिक ठंडा जल उसमें डाल दिया है। वह बर्तन दिन को छाया में और रात को ओस में रख जाता है। एक दिन और एक रात के बाद उस पानी में तैयार हो जाती है। इसके बाद वह मिट्टी प्रयोग में जासकती है।

मिट्टी के प्रयोग का नियम यह है कि उपवास आरम्भ करने साथ-साथ रात को सोने के समय उस गीली मिट्टी को पेट ऊपर—तोंदी के आस-पास चढ़ाते हैं। उसका नियम यह है मिट्टी को कुछ तादाद में लेकर, हाथों की गदेली पर रोटी समान लगभग आधे इंच की मोटाई में बढ़ा लेते हैं और तों के ऊपर इस प्रकार उसको रख लेते हैं कि जिससे मिट्टी पेड़ ऊपर पूर्णरूप से आजाय, उसके ऊपर एक गीला कपड़ा रख हैं और उसके ऊपर सूखा कपड़ा लपेटकर, पेट में बाँध देते हैं इस मट्टी को दो-ढाई घण्टे के उपरान्त निकालकर फेंक देते हैं कई दिनों तक ऐसा कर लेने से एकत्रित मल के विष को निकाल में बड़ी आसानी होती है।

इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि एनीमा के प्रयोग से एकत्रित मल निकल जाता है किन्तु मल से उत्पन्न हुआ विष जो रक्त में मिश्रित हो जाता है, वह जल और मिट्टी के प्रयोगों से निकाला जाता है।

वायु-सेवन

उपवास के दिनों में वायु-सेवन अत्यन्त आवश्यक है। प्रातःकाल का वायु-सेवन सब से अधिक लाभदायक है। मनुष्यों की आबादी से दूर—मैदानों, जंगलों और बागीचों की वायु, सेवन के योग्य होती है। वायु सेवन में दो बातों का ध्यान रखा जाता है। एक तो यह कि स्वच्छ और ताजी वायु अधिक-से-अधिक प्राप्त की जाय और दूसरे यह कि स्वास्थ्यप्रद स्थानों में इतना अधिक चलने का अवकाश मिले कि उसके द्वारा हलका व्यायाम सा हो जाय। उपवास करने वाले को अपनी शक्ति के अनुसार प्रातःकाल और सायंकाल शीतल और ताजी वायु में चलने का काम करना चाहिए और इस उद्देश्य के लिए एक-दो फर्लांग से लेकर कई-कई मील तक चला जा सकता है। न तो इतना अधिक कि चलने वाले को बाद में कष्ट का अनुभव हो और न इतना कम कि उससे उचित लाभ न हो।

ऊपर लिखे हुए प्रयोग उपवास के दिनों में अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि उपवास के साथ साथ इन सभी प्रयोगों का यथोचित उपयोग किया जाता है तो उपवास का स्थायी और पूर्णरूप से लाभ पहुँचता है।

१९—उपवास से किन दशाओं मे लाभ नही होत

किसी भी कार्य की क्रिया मे जब अंतर होता है, अथवा वह कार्य नियमपूर्वक नहीं किया जाता तो उसका उचित लाभ नहीं मिलता, यह तो ठीक ही है। इसलिए काम करने का नियम और ढग ठीक होना चाहिए। परन्तु इतना होने पर भी कभी कभी सफलता नहीं मिलती। उपवास के सम्बन्ध मे प्राय ऐसा होता है कि नियमानुसार कार्य का सम्पादन होने पर भी उससे उचित लाभ नहीं होता। ऐसी दशा मे नये आदमी अथवा अनुभवहीन व्यक्ति उपवास के प्रति अविश्वास करने लगते हैं। ऐसी दशा में उनको यह जानने की आवश्यकता है कि उपवास से किन दशाओं में लाभ नहीं होता और यदि होता भी है तो कम होता है। इस लिए यहाँ पर इस प्रकार की बातों का कुछ वर्णन आवश्यक मालूम होता है।

लोगों को यह न समझ लेना चाहिए कि किसी भी रोग में, रोगी की किसी भी दशा मे और किन्हीं भी क्रियाओं के द्वारा उपवास से लाभ पहुँचेगा ही। बल्कि इस बात को ठीक ठीक समझने की आवश्यकता है कि जब तक विधान के अनुसार उपवास का ठीक-ठीक प्रयोग न होगा और रोगी की परिस्थितियाँ और अवस्थायें अनुकूल न पड़ेगी, तब तक उपवास से उचित लाभ की आशा करना व्यर्थ है। नीचे जिन बातों

र प्रकाश डाला जायगा, उनसे इस बात की यथार्थता प्रकट हो जायगी।

शक्तियों का अधिक क्षय हो जाने पर

रोग के अधिक पुराने एवं असाध्य हो जाने पर अथवा रोगी की शक्ति जाती रहने पर जब उपवास के प्रयोग किये जाते हैं तो उनका जल्दी प्रभाव नहीं पड़ता। कभी कभी तो ऐसा होता है कि उपवास करने वाले को और उपवास कराने वाले को—दोनों को निराशा होती है। यदि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो तो उनको निराश होने की आवश्यकता नहीं है। यह सम्भव है कि उस रोगी की दशा में उपवास का जल्दी प्रभाव न पड़ेगा। फिर भी उसको लाभ होगा और इसके लिए यह बहुत अच्छा होगा कि किसी अनुभवी व्यक्ति से सम्मति ली जाय।

किसी भी दशा में जब मनुष्य की शक्तियों का अधिक क्षय हो जाता है तो न केवल उपवास के प्रयोग अपना प्रभाव डालने में निष्फल साबित होते हैं, वरन् कोई भी साधन असमर्थ मालूम होता है। अन्य साधनों की अपेक्षा, उपवास के प्रयोग ऐसी दशाओं में अधिक सफलता पाते हैं। परन्तु कुछ विलम्ब और सावधानी के साथ।

उपवास में जल्दबाज़ी

उपवास के असफल होने का कारण दूसरा यह है कि जब उपवास में जल्दबाज़ी से काम लिया जाता है। कुछ लोगों की

ऐसी मनोवृत्ति होती है कि वह किसी भी कार्य का फल स
से पूर्व चाहते हैं। उपवास के सम्बन्ध में भी वे लोग यही सं
हैं कि उपवास प्रारम्भ करते ही उसका लाभ हो जाय। इस प्र
तत्क्षण लाभ चाहने वाले बड़ी जल्दबाजी से काम लेते हैं।
दशाओं में उपवास उचित रूप से सफल नहीं होता। इस
फल यह होता है कि लोग अपनी भूल को नहीं समझते
उपवास पर लाञ्छन लगाते हैं।

उपवास के द्वारा स्वाभाविक रूप से रोगों के विष का नि
करण किया जाता है इसलिए रोगों के शमन में उपवासों
द्वारा कुछ विलम्ब होता है। ऐसी दशा में जल्दबाजी से क
लेना उपवास की साधना को व्यर्थ कर देना है। कुछ लोग अ
इच्छानुसार लाभ की आशा पूरी नहीं कर पाते तो अविश्वा
पूर्वक उपवास के नियमों में बाधायें पहुँचती हैं इस दशा
उपवास पूर्ण रूप से व्यर्थ हो जाते हैं। अतएव बहुत शान्ति
और विश्वासपूर्वक उपवास के प्रयोग करने चाहिए।

विश्वास और दृढ़ता की कमी

उपवास के सम्बन्ध में विश्वास और दृढ़ता की बहुत आव-
श्यकता होती है। दृढ़ता के लिए विश्वास होना चाहिए और
विश्वास होने पर ही दृढ़ता उत्पन्न होती है।

प्राय देखा जाता है कि उपवास आरम्भ कर देने के एक,
दो, तीन दिन बाद लोग अधिक घबराने लगते हैं। यदि उनको
इस बात का ठीक-ठीक ज्ञान हो कि उपवास के दिनों में हमारे

को होता है, जिनको उनका ज्ञान नहीं है। ज्ञान न होने प
विराम और दृढ़ता नहीं पैदा हो सकती।

विश्राम का अभाव

इस बात में लोगों में मतभेद है कि उपवास के दिनों में, परिश्रम करना चाहिए या नहीं। जिसके सम्बन्ध में हम पीछे कुछ बातें बता चुके हैं और वे बातें हैं, व्यायाम के सम्बन्ध में। अधिकांश लोगों की सम्मतियों पर जो नतीजा निकलता है, वह व्यायाम के पक्ष में है।

इसीलिए हमने व्यायाम का उपवास के दिनों में समर्थन किया है। जो लोग व्यायाम कभी नहीं करते, उनको विशेष रूप से व्यायाम की आवश्यकता नहीं है। नित्य के काम व्यायाम के दिनों में भी बराबर करने चाहिए। उनके सिवा व्यायाम के अभाव में वायु-सेवन अथवा वाकिंग से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

उपवास के दिनों में निद्रा की कमी हो जाती है। कुछ लोगों को तो इसके अभाव में अधिक कष्ट होता है। यद्यपि निद्रा का अभाव चिंताजनक बात नहीं है फिर भी यदि नींद-भर सोया जासके तो अधिक अच्छा होगा। यहाँ पर यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि जो लोग परिश्रम अथवा व्यायाम नहीं करते, उनको विशेष रूप से उपवास के दिनों में नींद कम आती है। नींद का आना अत्यन्त स्वास्थ्यकर है। इसलिए परिश्रम और व्यायाम, दोनों इतने आवश्यक हैं कि जिससे रात, को भली प्रकार नींद आसके। जो लोग न तो व्यायाम ही करते हैं और

जाती। अतएव अनुभवी आदमियों को चाहिए कि इतनी कम मात्रा में फलों का रस अथवा इसी प्रकार की कोई वस्तु आरम्भ में देवें, जो कि पेट में जाकर धीरे धीरे सुप्तावस्था में पड़ी हुई अंतड़ियों में गति उत्पन्न करे और फिर उसकी मात्रा बहुत धीरे धीरे बढ़ाई जाय। इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि यदि लम्बे उपवास के तोड़ने पर भरपेट भोजन दे दिया जाय तो मनुष्य की मृत्यु तक हो सकती है।

किसी भी दशा में उपवास को नियमानुसार ही तोड़ना चाहिए। नहीं तो लाभ न होगा और कभी-कभी तो लाभ के स्थान पर हानि होती है।

२०—उपवास के दिनों में उपद्र

उपवास के दिनों मे अनेक प्रकार के उपद्रव पै
नि‍न लोगा को उन उपद्रवों का कारण नहीं
इन उपद्रवों से घबराने लगते हैं। परन्तु घबराने की
है। जिसके शरीर मे जितना अधिक विकार होता है, उ
मे उतने ही अधिक उपद्रव पैदा होते हैं। वास्तव में
नहीं हैं, किन्तु ये लक्षण हैं, जिनके द्वारा हमें इस बा
होता है कि उपवास आरंभ करने पर, प्रकृति ने शरीर
करने का काय आरभ कर दिया है।

यहाँ पर मोटे म टे उन उपद्रवों पर कुछ प्रकाश डा
और उनके कारण तथा समाधान करने के उपाय
जायगे। उनके द्वारा उत्पन्न होने वाली व्याधियों का श
चाहिए और सदा प्रसन्न रहने की चेष्टा करनी चाहिए।

शरीर में पीड़ा

उपवास आरभ करने के साथ ही शरीर में पीडा
है। जिनके शरीर मे विकार कम होते हैं उनको कम
विकार अधिक होते हैं, उनको अधिक पीड़ा होती है।

शरीर की पीडा कोई नयी व्याधि नहीं है। जो
मे सचित था, भोजन बन्द करने के बाद,

उसमें उत्तेजना पैदा होती है। जिससे मल उभड़ता है और शरीर में पीड़ा पैदा करता है। किसी-किसी का तो इतनी अधिक पीड़ा होती है जो सहन नहीं होती। उस दशा मे घबराना न चाहिए और न उसको दूर करने के लिए कोई दूसरा उपाय ही करना चाहिए। यह पीडा कई रोज तक रहता है और जितना मल क्षीण होता जाता है, उतनी ही पीड़ा कम होती जाती है।

शरीर मे गर्मी

उपवास आरभ करने पर शरीर गर्म होजाता है। किसी-किसी के शरीर में यह गर्मी इतनी बढ जाती है जो बुखार मालूम होती है। यह ठीक है कि इस प्रकार की गर्मी को ही ज्वर कहते हैं। उपवास आरभ करने के बाद शरीर के भीतर से विष निकलने का कार्य जो आरभ होता है उसी से शरीर मे गर्मी बढ जाती है। उससे किसी प्रकार की चिन्ता न करके यह समझ लेना चाहिए कि प्रकृति, शरीर के भीतर से विष विसर्जन का कार्य कर रही है। विष में उत्ताप होता है। उस उत्तापपूर्ण विष के सम्पर्क से शरीर गर्म होजाता है।

इस गर्मी को ज्वर समझकर स्नान करना बन्द न करना चाहिए। जैसा कि पिछले पन्नो मे बताया गया है, नित्य नियम पूर्वक प्रातःकाल स्नान करना चाहिए। गर्मी के दिनो मे यदि सायकाल को भी स्नान किया जाय तो अच्छा होता है। नहाने का जल शीतल और स्वच्छ होना चाहिए। इस प्रकार स्नान से शरीर में उत्पन्न हुई गर्मी शान्त होगी और चित्त को प्रसन्नता मिलेगी।

२०—उपवास के दिनो में उपद्रव

उपवास के दिनों में अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा होते
जिन लोगों को उन उपद्रवों का कारण नहीं मालूम,
इन उपद्रवों से घबराने लगते हैं। परन्तु घबराने की बात न
है। जिसके शरीर मे जितना अधिक विकार होता है, उसके श
मे उतने ही अधिक उपद्रव पैदा होते हैं। वास्तव मे यह उपद्र
नहीं है, किन्तु वे लक्षण हैं, जिनके द्वारा हमें इस बात का ज्ञा
होता है कि उपवास आरभ करने पर, प्रकृति ने शरीर को नीरो
करने का कार्य आरभ कर दिया है।

यहाँ पर मोटे मोटे उन उपद्रवों पर कुछ प्रकाश डाला जायग
और उनके कारण तथा समाधान करने के उपाय भी बता
जायगे। उनके द्वारा उत्पन्न होने वाली व्याधियों का शमन करन
चाहिए और सदा प्रसन्न रहने की चेष्टा करनी चाहिए।

शरीर में पीड़ा

उपवास आरभ करने के साथ ही शरीर में पीडा पैदा होती
है। जिनके शरीर मे विकार कम होते हैं उनको कम और जिनके
विकार अधिक होते हैं, उनको अधिक पीडा होती है।

शरीर की पीडा कोई नयी व्याधि नहीं है। जो मल शरीर
में सचित था, भोजन बन्द करने के बाद, प्रकृति की ओर से

आती। फिर भी ऐसे कुछ लोग हो सकते हैं, जिनको उल्टी होती है। उल्टी के द्वारा बिना पचा हुआ भोजन मुँह से निकलता है। उसके अभाव में कभी कभी पित्त गिरता है।

कुछ रोगियों को लम्बे उपवासों के अन्त में भी उल्टी होती देखी गया है। परन्तु बहुत कम। इस ओर की उल्टी का होना खराब होता है। यदि ऐसी उल्टी हो तो समझ लेना चाहिए कि शरीर के भीतर बहुत पुराना विष मौजूद है। ऐसी दशा में यदि किसी अनुभवी आदमी की सहायता ली जाय तो अधिक अच्छा होता है।

कै हो जाने के बाद मुँह साफ कर डालने पर ठण्ढा पानी पीना चाहिए और इस प्रकार का पानी थोड़ी थोड़ी देर के बाद बराबर पीना चाहिए। नाड़ियों के उत्तेजित हो जाने पर और स्नायुओं की गति नीचे की ओर के बजाय ऊपर की ओर हो जाने पर उल्टी होती है। स्नान और शीतल जल का पान इसमें लाभकारी होता है।

आँखों में जलन

उपवास से आँखों में जलन पैदा होती है। यह जलन जब अधिक हो जाती है तो ऐसा मालूम होता है जैसे आँखों से लपटें निकल रही हों।

इस दशा में ठण्ढे पानी से खूब नहाना चाहिए और शीतल तथा हवादार स्थानों में लेटकर विश्राम करना चाहिए। यदि अधिक अशान्ति मालूम हो तो ठण्ढे पानी की पट्टियाँ आँखों पर

मस्तक-पीड़ा

सिर में पीड़ा उत्पन्न होने का भी वही कारण है, जिन कारणों से शरीर में पीड़ा और गर्मी पैदा होती है। यह पीड़ा कम और अधिक हो सकती है। कम और अधिक होना शरीर के विकारों पर निर्भर है। यदि अधिक पीड़ा मालूम हो और शीतल जल से भली प्रकार स्नान करने पर भी न कम हो तो सिर में ठण्डे पानी की पट्टियाँ चढ़ाना चाहिए। इससे कुछ शान्ति अवश्य मिलेगी। लेकिन जड़ से पीड़ा तब तक न जायगी, जब तक शरीर के भीतर विष मौजूद रहेगा।

पेट में जो मल एकत्रित हो जाता है उस मल से बना हुआ विष जब रक्त में मिश्रित हो जाता है और वह मिश्रित रक्त जब मस्तिष्क की ओर दौड़ता है तो उससे सिर में पीड़ा उत्पन्न होती है। अतएव जब तक रक्त से वह विष निकल नहीं जाता, तब तक बराबर पीड़ा होती है। साधारण मस्तक पीड़ा में केवल स्नान से ही काम चल जाता है किन्तु अधिक पीड़ा में शीतल पानी की पट्टियाँ ही चढ़ाना चाहिए। किसी तेल अथवा औषधि का प्रयोग न करना चाहिए।

उल्टी होना

उपवास के दिनों में के या उल्टी भी होती है, परन्तु सभी को नहीं। उल्टी होने से कोई चिंता की बात नहीं होती। उपवास के साथ-साथ एनीमा का प्रयोग करने से उल्टी की आशंका नहीं रह

आती। फिर भी ऐसे कुछ लोग हो सकते हैं, जिनको उल्टी होती है। उल्टी के द्वारा बिना पचा हुआ भोजन मुंह से निकलता है। उसके अभाव में कभी कभी पित्त गिरता है।

कुछ रोगियों को लम्बे उपवासों के अन्त में भी उल्टी होती देखी गयी है। परन्तु बहुत कम। देरी और के की उल्टी का होना खराब होता है। यदि ऐसी उल्टी हो तो समझ लेना चाहिए कि शरीर के भीतर बहुत पुराना विष मौजूद है। ऐसी दशा में यदि किसी अनुभवी आदमी की सहायता ली जाय तो अधिक अच्छा होता है।

कै हो जाने के बाद मुंह साफ कर डालने पर ठण्डा पानी पीना चाहिए और इस प्रकार का पानी थोड़ी थोड़ी देर के बाद बराबर पीना चाहिए। नाड़ियों के उत्तेजित हो जाने पर और स्नायुओं की गति नीचे की ओर के बजाय ऊपर की ओर हो जाने पर उल्टी होती है। स्नान और शीतल जल का पान इसमें लाभकारी होता है।

आँखों में जलन

उपवास से आँखों में जलन पैदा होती है। यह जलन जब अधिक हो जाती है तो ऐसा मालूम होता है जैसे आँखों से लपटें निकल रही हों।

इस दशा में ठण्डे पानी से खूब नहाना चाहिए और शीतल तथा हवादार स्थानों में लेटकर विश्राम करना चाहिए। यदि अधिक अशान्ति मालूम हो तो ठण्डे पानी की पट्टियाँ आँखों पर

चढ़ाना चाहिए। प्राय ऐसा होता है कि लोग, प्यास न लगने पर पानी नहीं पीते, उस दशा मे इस प्रकार के उपद्रव अधिक पैदा होते हैं। इसलिए बिना प्यास ही ठण्ढा पानी पीना चाहिए और बार-बार पीना चाहिए।

हिचकी आना

उपवास के दिनो मे हिचकी आने की भी शिकायत, कभी-कभी और किसी-किसी को हो जाती है। यो तो हिचकी एक साधारण बात है, परन्तु यदि किसी कारण से इसकी अधिकता हो जाती है तो यह हानिकारक भी होती है। परन्तु बहुत कम इसके सयोग देखे जाते हैं।

साधारण हिचकी मे, शीतल जल पीने से काम चल जाता है। उपवास के आरम्भ मे एनीमा का जो प्रयोग किया जाता है, उसके द्वारा एकत्रित मल निकल जाता है। उस दशा मे इस प्रकार के उपद्रव की आशका बहुत कम रह जाती है। फिर भी किसी-किसी को इस प्रकार का कष्ट हो सकता है। हिचकी का सयोग पित्त के व्यतिक्रम से पैदा होता है। इसको शात करने के लिए ठण्ढे जल के स्नान और हिप-बाथ लेना ही पर्याप्त होगा।

यदि उचित रूप से स्नान न किए जायेंगे, अधिक पानी न पिया जायगा तो इस प्रकार के उपद्रवो की आशका होती है। इसलिए कि शरीर के भीतर का विष बडी तेजी के साथ शरीर से निकलने लगता है। उस समय अनेक प्रकार के कोप और उपद्रव हो सकते हैं और वे सब विकारो के ऊपर निर्भर हैं।

कर आना

कभी-कभी चक्कर आते हैं। प्रारम्भ
उप
नकर। चक्कर आने पर साधारणतया
घ अधिक कमजोरी के कारण चक्कर
नहीं है। हम ऊपर बता चुके हैं कि
उपवास करने वाला म के भीतर रुके हुए विषों की गरमी बढ़ी
में नहीं, किन्तु कुछ आ उठती है। केवल उसी के कारण चक्कर
लोग समझने लगते हैं कि सभी को नहीं आते। जिनको चक्कर
आते हैं, परन्तु ऐसा नहीं दूर स्नान करना चाहिए। यदि सरदी
उपवास के दिनों में शरीर कर की चिन्ता न करनी चाहिए। जिनको
वेग के साथ उत्तेजित हो हिए। इसके सिवा दिन में एक-दो बार
आने लगते हैं। चक्कर हिए। उसमें कुछ मिलाने की आवश्यक-
आवें, उस समय ठण्डा पानी ध्यान रखना चाहिए कि चक्कर जब
के दिनों का ताप अधिक तक खूब विश्राम लेना चाहिए। सिर
ध्यान ठण्डा पानी पीना को भिगोकर रखना चाहिए।
बाद नाक का मल पानी से

अधिक कमजोरी

करता नहीं है। इस बात
तक नष्ट न हो जाय, तब कमजोरी का अनुभव तो सभी लोग
के ऊपर ठण्डे पानी से कपड़ा के विद्वानों का कहना है कि उपवास
अ जो लोग निर्बलता को अनुभव करते हैं,
न है। होता यह है कि मनुष्य के दिल
उपवास के दिनों में कि खाना न खाने से कमजोरी आजाती
करते हैं। प्राकृतिक चिकि
से निर्बलता नहीं आती।
उसका कारण उनका अज्ञ
में यह भाव भरा रहता है

है, इसलिए उपवास के बाद जो शरीर की स्वाभाविकता में अन्तर पड़ता है, उसको वह उसी निर्बलता के रूप में अनुभव करने लगता है।

इसलिए सब से पहले अपने दिल से इस प्रकार का फितूर निकाल देना चाहिए। इस बात पर भली-भाँति विश्वास करना चाहिए कि साधारण तौर पर उपवास निर्बलता नहीं पैदा करता क्या कि उपवास के दिनों मे जठराग्नि भोज्य पदार्थों के पचाने के काय के बजाय एकत्रित मल के पचाने का कार्य किया करती है। इसलिए जब तक मल ठीक-ठीक पच नहीं जाता, तब तक खाने की चिन्ता करना बिल्कुल व्यर्थ की बात है। हाँ, विशेष दशाओं में अधिक कमजारी की उपेक्षा भी न करनी चाहिए। जैसे अधिक वृद्ध और रोग के कारण निर्बल मनुष्य, उपवास से पूर्व अत्यन्त शक्तिहीन स्त्री और बालक अथवा इसी प्रकार के अन्य व्यक्ति यदि अधिक कमजोरी मे दिखाई दे और अवस्था चिन्ताजनक मालूम हो तो उपवास के अनुभवी व्यक्तिओं को दिखा लेना चाहिए। यह दशा लम्बे उपवासा मे ही हो सकती है और उन अवस्थाओं मे इसकी सम्भावना होती है जब प्रकृति मल और विष निकालने का कार्य पूरा कर चुकती है। उस समय यदि अनुभवहीनता से उपवास न तोडा जाय तो शारीरिक क्षति पहुँच सकती है।

अब प्रश्न यह है कि इस बात को कैसे समझा जाय कि उपवास का कार्य समाप्त हो चुका है? यह प्रश्न ठीक है,

इसका उत्तर, 'उपवास कब और कैसे तोड़ना चाहिए', नामक शीर्षक में विस्तार के साथ दिया जायगा।

नाड़ी की चाल में अन्तर

उपवास के दिनों की चाल में अन्तर हो जाना साधारण बात है। यह अन्तर कभी-कभी चाल में कमी कर देता है और कभी अधिकता। दोनों ही बातें बहुत स्वाभाविक हैं। इसलिए सहज ही उन पर चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि पुरुष की नाड़ी की गति एक मिनट में ७२ और स्त्रियों की नाड़ी ८० होती है। यह गति जब मन्द होती है तो ६० ५० और ४० तक हो जाती है। किन्तु जब तेजी पर होती है, तब १०० ११०, १२० और कभी-कभी इससे भी अधिक हो जाती है।

यदि नाड़ी की गति ५० तक आ जाय तो भी चिन्ता की बात नहीं होती। उपवास-चिकित्सा के बड़े-बड़े डाक्टरों का कहना है कि नाड़ी की गति कम होते-होते चालीस के आस पास आ जाने पर भी किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं देखी गयी। किन्तु यदि इतनी कमी के साथ यदि शरीर में कुछ और बुरे लक्षण न प्रतीत हों।

उपवास के कारण रक्त की गति में कमी नहीं आती। किन्तु यदि उसमें अधिक कमी मालूम हो, पैरों के नीचे के भाग अधिक ठण्ढे मालूम हों और होठों का स्वाभाविक रंग बदल जाय तो चिन्ता की बात समझनी चाहिए, परन्तु ऐसा साधारणतया

सयोग नहा आता। यदि इस प्रकार की दशा किसी रोगी
पैदा हो जाय तो सावधानी से काम लेने की आवश्यकता
सब से पहले यह जानना चाहिए कि उपवास में ऐसे अ
नहीं आते। और आते भी हैं तो उन्हीं के साथ जो उपवास
दिनों म न तो व्यायाम ही करते है और न शारीरिक परिश्रम

इस प्रकार के उपद्रव बचाने के लिए व्यायाम, वायु
और शारीरिक परिश्रम बहुत आवश्यक है। किन्तु यदि भानु
के कारण व्यायाम और परिश्रम म अधिकता करदी जाय
उससे भी हानि ही होगी। इसलिए उसकी मात्रा उतनी ही
चाहिए जिससे शरीर को असुख और अशान्ति न मालूम
नाड़ी की गति मद होने के साथ-साथ यदि ऊपर बताये
अशुभ लक्षण प्रतीत हो तो यदि सम्भव हो सके तो साधा
व्यायाम करना चाहिए, अन्यथा मोटे और गर्म कम्बल ओढ़
शरीर म गरमी पहुँचानी चाहिए, किन्तु मुह न ढकना चाहि
स्वच्छ और ताजी वायु बराबर मिलनी चाहिए।

यदि नाडी की गति अधिक तीव्र हो जाय, उस दशा मे
तक अधिक चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि
तीव्र होती हुई दिखाई दे तो शीतल जल के स्नान और हिपबा
से उसको शान्त करना चाहिए। किन्तु उसकी शान्ति के लिए
दोनो प्रयोगो को उचित मात्रा मे ही काम मे लाना चाहिए।

२१--उपवास से न अच्छे होनेवाले रोग

शरीर मे कुछ ऐसे राग भी उत्पन्न होत हे जिनमे उपवास का प्रभाव नहीं पडता। इसलिए यह नहीं कहा जासकता कि शरीर की प्रत्येक अवस्था मे उपवास लाभकारी है। ऐसा कहना अपने आप को भ्रम मे डालना है और दूसर को भी भुलावा देना है।

कोई भी विज्ञान वहा तक काम करता हे जहाँ तक काम करने के लिए उसमे तत्व पाये जाते हैं। उपवास शरीर-विज्ञान की क्रिया है। इस क्रिया का शारीरिक रागा और विकारो से किस प्रकार सम्बध हे, इसको समझ लेना चाहिए और यह भी जान लेना चाहिए कि किस प्रकार की व्याधियो मे उससे लाभ उठाया जासकता है और किन मे नहीं। यहाँ पर उस प्रकार के रोगो का सक्षेप मे वर्णन करना हे जिनम उपवास लाभकारी सिद्ध नहीं हुए। इसके सबध मे ठीक-ठीक जान लेना और समझ लेना बहुत आवश्यक है।

टूटे हुए अग

चोट खाकर अथवा किसी अन्य प्रकार के सयोग से जब शरीर का कोई अग टूट जाता है तो उसके जुडने का उपाय उपवास के द्वारा नहीं होता। इसी प्रकार जब किसी बाहरी कारण से शरीर का कोई अग, भग होजाता है तो उसका ठीक करना

उपवास का काम नहीं है। उसका ठीक करना उन्हीं का कार्य है जो लोग टूटे हुए अंगों का जोड़ा करते हैं।

यही नहीं बल्कि शरीर के भीतरी सुकुमार अंग जब किन्हीं कारणों या सयोगों से टूट जाते हैं, अथवा नष्ट हो जाते हैं तो उनके जोड़ने और फिर से उत्पन्न करने का कार्य उपवास के द्वारा नहीं होता। इसलिए ऐसी दशाओं में जो लोग टूटे हुए अंग का ही काम करते हैं, उन्हीं से सहायता लेनी चाहिए।

मोच अथवा किसी हड्डी आदि का हट जाना

प्राय हाथ या पैर में मोच आजाती है जिसके कारण कभी-कभी बड़ा कष्ट हो जाता है। अथवा चोट या धक्का खाकर कोई हड्डी अपने स्थान से हट जाती है। उसमे भी बड़ा कष्ट होता है। इन सभी दशाओं मे उपवास से लाभ नहीं होता। इनके लिए उन्हीं लोगों से सहायता लेनी चाहिए, जो लोग हड्डियों के बिठाने का काम करते हैं।

किन्तु हॉ यदि किसी अंग के टूटने या हटने से उस स्थान में विष उत्पन्न हो जाय तो उस विष को निकालने का कार्य उपवास के द्वारा ही ठीक ठीक हो सकता है। जिस स्थान पर इस प्रकार का विष मालूम पड़े, उस स्थान को जल से खूब धोना चाहिए, मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए और उपवास करके उसके विष को नष्ट कर देना चाहिए।

ज़ख़्म फोड़ा और घाव

ज़ख़्म, फोड़ा और घाव लगभग एक ही हैं। इनकी प्रारम्भिक अवस्था में भी उपवास का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए इनके सम्बन्ध में उपवास करना अनुपयोगी ही होता है।

फोड़ा, ज़ख़्म और घाव में मिट्टी के प्रयोग जादू का-सा असर डालते हैं और बहुत जल्दी महन करते हैं। किन्तु यदि ज़ख़्म बिगड़ जाय और उसमें विष उत्पन्न हो जाय तो शीतल जल की पट्टी तथा मिट्टी के प्रयोग के साथ साथ यदि उपवास किया जाय तो उत्पन्न हुए विष का निराकरण शीघ्रता के साथ होता है।

मस्तिष्क के रोग

मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं के नष्ट हो जाने से जो विक्षिप्त अवस्था पैदा हो जाती है उसके कई रूप होते हैं। साधारण तौर पर बिगड़े हुए मस्तिष्क को पागलपन कहते हैं। जिन दशाओं में मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं का क्षय हो जाता है और उनमें जो विक्षिप्त अवस्था पैदा होती है, उनमें भी उपवास से लाभ नहीं होता। उनके लिए जल चिकित्सा अधिक लाभकर सिद्ध हुई है।

सूखा रोग

यह रोग प्रायः बच्चों को हो जाता है। जिसमें उनके शरीर का रक्त और माँस सूख जाता है और उसके बाद हड्डियाँ भी सूखने लगती हैं। सूखा रोग में उपवास से लाभ नहीं होता।

२२—उपवास से अच्छे होनेवाले रोग

साधारण रूप मे यह समझ लेना चाहिए कि उपवास उन सभी रोगों में लाभ पहुँचाता है जो रोग, शरीर के भीतर एकत्रित मल और विकारों के कारण उत्पन्न होते है। यह विकार हमारे संयम और नियम से न रहने के कारण पैदा होते हैं, और उसके बाद भी प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने के कारण हम अपने शरीर को रोगी बनाते हैं। इस प्रकार के सभी रोगों का निवारण करने में उपवास से अधिक स्थायी लाभ पहुँचाने वाला और कोई साधन नहीं हो सकता।

अच्छे होने वाले रोग

यद्यपि रोगों की संख्या इतनी नहीं है जो गिनाई जासके, परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार उन सभी रोगों का मूल कारण, जो मल और उसके विष के द्वारा उत्पन्न होते हैं, एक हैं। फिर भी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे भिन्न-भिन्न रोगों का प्रादुर्भाव होता है। ऐसी दशा मे यह आवश्यक होगा कि यहाँ पर कुछ ऐसे रोगो के सम्बन्ध मे संक्षेप मे प्रकाश डाला जाय, जिनके द्वारा उपवास से अच्छे होने वाले रोगों का अनुमान होसके—

क्षय, तपेदिक—यह अत्यन्त घातक रोग होता है। दुर्भाग्य से जिसको लग जाता है, उसको अंत करके ही छोड़ता है।

...स और प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा यह रोग सेहत किया ...ता है।

हिस्टीरिया, मूर्छारोग—यह रोग अधिकाश मे स्त्रियों को होता ... जिनको यह रोग हो जाता है उनके जीवन-भर यह रोग ...के साथ रहता है। उपवास के द्वारा हिस्टीरिया का नाश ...ता है।

सभी प्रकार के ज्वर—कैसा भी ज्वर क्यों न हो उपवास ...सकी प्रधान ओषधि है।

सभी प्रकार की खाँसी—चाहे जैसी खाँसी हो, उपवास क... द्वारा सरलता पूर्वक उसका निर्मूल होता है।

श्वास का रोग—यह रोग न केवल रोगी के जीवन भर रहता है, किन्तु रोगी को सतान में भी अपना प्रभाव डालता है। इसको दूर करने का उपवास ही एक साधन है।

गले के रोग—गले के समस्त रोगों का शमन उपवास के द्वारा होता है।

मानसिक निर्बलता—किन्ही कारणों से जो मानसिक निर्बलता पैदा हो जाती है और जिसके दूर करने के लिए कोई भी ओषधि नहीं होती, वह भी उपवास के द्वारा दूर होती है।

नाक के रोग—नाक से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी प्रकार के रोग उपवास से द्वारा समूल नष्ट होते हैं। यहाँ तक कि जिनको नाक मे सूंघने का गुण पैदायशी नहीं पाया गया उपवास के द्वारा नाक की उस त्रुटि को दूर किया गया है।

चर्म रोग—दाद खाज, फोड़ा-फुन्सी आदि-आदि जितने भी चर्म रोग कहलाते हैं, उपवास के द्वारा जड़ से नष्ट हो जाते हैं।

प्रदर रोग—स्त्रियों की यह भयानक बीमारी है। इसका निवारण औषधियों के द्वारा कभी नहीं होता। उपवास से सदा के लिए इसका अंत हो जाता है।

प्रमेह, वीर्य रोग—वीर्य-सम्बन्धी जितने भी रोग हैं, उपवास के द्वारा वे सब शान्त हो जाते हैं और शरीर सदा के लिए नीरोग हो जाता है।

चेचक—चेचक जैसे संक्रामक रोगों में औषधियों का प्रयोग नहीं किया जाता। इस प्रकार के भयानक रोग उपवास के द्वारा अच्छे होते हैं।

ऊपर जो रोग बताये गये हैं, इनसे सम्बन्ध रखने वाले सभी प्रकार के रोग उपवास के द्वारा अच्छे होते हैं। रोगों का शमन तो एक साधारण काम है जो उपवासों के द्वारा होता ही है, किंतु लम्बे उपवासों से इतने विस्मयजनक फल पाये जाते हैं जो समझ में नहीं आते। विशेषकर शरीर की पैदायशी त्रुटियों में।

यहाँ पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार आग में तपकर सोना खरा साबित होता है, उसी प्रकार उपवास के द्वारा शरीर विशुद्ध तैयार होता है।

२३–रोग और उनके लिए उपवास

सभी प्रकार के रोगों में एक से उपवासों की आवश्यकता नहीं होती। जो जैसे रोग होते हैं, उनके लिए उसी प्रकार का उपवास करना पड़ता है। उपवास तीन प्रकार के माने गये हैं, अर्द्धोपवास, छोटे उपवास और बड़े उपवास। इन तीनों प्रकार के उपवासों की व्यवस्था रोग के अनुसार करनी पड़ती है।

अर्द्धोपवास

जिन लोगों ने पहले कभी उपवास नहीं किया वे उपवास करने में एक प्रकार भय का अनुभव करते हैं। इसके सिवा नये उपवास करने वालों के लिए, यह भी आवश्यक होता है कि छोटा और बड़ा, कोई भी उपवास आरम्भ करने के पूर्व उपवास का कुछ अभ्यास होना आवश्यक है। इसलिए उनको पहले अर्द्धोपवास करके उपवास का अभ्यास एक-दो बार कर लेना चाहिए।

यदि शरीर में कोई विशेष रोग नहीं है तो भी कभी कभी अर्द्धोपवास कर लेना बहुत ही उपयोगी होता है। यदि प्रत्येक माह में अथवा दो महीने में एक बार अर्द्धोपवास कर लिया जाय तो फिर छोटे और बड़े उपवासों की आवश्यकता ही न पड़ेगी। किन्तु यदि शरीर में कोई विशेष रोग मौजूद है तो

छोटे उपवास

साधारण रोगो में छोटे उपवास किये जाते हैं। कुछ व का यह भी कहना है कि यदि मामूली रोगों में बड़े उपवास जाँय तो अधिक लाभ नहीं होता, परन्तु हमारी समझ में निवारण के पश्चात् न तो उपवास किया जासक्ता है औ उसको उपवास कह ही सकते हैं। छोटे उपवास १ दिन, २ भोजन न करने को भी कहते हैं और १ दिन से लेकर १ स तक का उपवास छोटे उपवासों में गिना जाता है।

नीचे कुछ ऐसे रोग बताये जाते हैं जिनका निराकरण छ उपवासो से हो जाता है—

१—सिर दर्द, आधे सिर की पीड़ा आदि
२—कोष्ठबद्धता, अपच के कारण
३—जुकाम-ज्वर, उससे उत्पन्न हुई व्याधियाँ
४—फोड़े-फुसी, अन्धौरी इत्यादि
५—अतिसार, पेचिश के रोग
६—चर्म रोग, खाज-दाद आदि
७—दन्त रोग, पायोरिया आदि
८—पेट की पीड़ा, उदर से सम्बंध रखने वाले रोग
९—खाँसी, कफ के बिगड़ने से उत्पन्न हुए रोग
१०—गले का रोग (Tonsil)
११—इन्फ्लुएन्जा
१२—टीके से उत्पन्न हुआ ज्वर अथवा अन्य विकार

२३—रोग और उनके लिए उपवास

भी प्रकार के रोगों में एक से उपवासों की आवश्यकता नहीं होती। जो जैसे रोग होते हैं उनके लिए वैसा प्रकार का स करना पड़ता है। उपवास तीन प्रकार के माने गये हैं पवास, छोटे उपवास और बड़े उपवास। इन नाना प्रकार के ासों की व्यवस्था रोग के अनुसार करनी पड़ती है।

अर्द्धोपवास

जिन लोगों ने पहले कभी उपवास नहीं किया वे उपवास ने में एक प्रकार भय का अनुभव करते हैं। इसके सिवा उपवास करने वालों के लिए, यह भी आवश्यक होता है कि टा और बड़ा, कोई भी उपवास आरंभ करने के पूर्व उपवास कुछ अभ्यास होना आवश्यक है। इसलिए उनको पहले र्द्धोपवास करके उपवास का अभ्यास एक-दो बार कर लेना हिए।

यदि शरीर में कोई विशेष रोग नहीं है तो भी कभी-कभी र्द्धोपवास कर लेना बहुत ही उपयोगी होता है। यदि प्रत्येक ाह में अथवा दो महीने में एक बार अर्द्धोपवास कर लिया ाय तो फिर छोटे और बड़े उपवासों की आवश्यकता ही न ड़ेगी। किन्तु यदि शरीर में कोई विशेष रोग मौजूद है तो

छोटे उपवास

साधारण रोगों में छोटे उपवास किये जाते हैं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि यदि मामूली रोगों में बड़े उपवास किये जाँय तो अधिक लाभ नहीं होता, परन्तु हमारी समझ में रोग निवारण के पश्चात् न तो उपवास किया जासकता है और न उसको उपवास कह ही सकते हैं। छोटे उपवास १ दिन, २ दिन भोजन न करने को भी कहते हैं और १ दिन से लेकर १ सप्ताह तक का उपवास छोटे उपवासों में गिना जाता है।

नीचे कुछ ऐसे रोग बताये जाते हैं जिनका निराकरण छोटे उपवासों से हो जाता है—

१—सिर दर्द, आधे सिर की पीड़ा आदि
२—कोष्ठबद्धता, अपच के कारण
३—जुकाम-ज्वर, उससे उत्पन्न हुई व्याधियाँ
४—फोड़े फुंसी, अन्धौरी इत्यादि
५—अतिसार, पेचिश के रोग
६—चर्म रोग, खाज-दाद आदि
७—दन्त-रोग, पायरिया आदि
८—पेट की पीड़ा, उदर से सम्बन्ध रखने वाले रोग
९—खाँसी, कफ के बिगड़ने से उत्पन्न हुए रोग
१०—गले का रोग (Tonsil)
११—इन्फ्लुएन्ज़ा
१२—टीके से उत्पन्न हुआ ज्वर अथवा अन्य विकार

१३—साधारण वीर्य संबंधी रोग

१४—पसली की पीड़ा

१५—मासिक-धर्म सम्बन्धी रोग

१६—मूत्राशय की बीमारियाँ

१७—बवासीर, गुदा के रोग

इस प्रकार के अथवा इनसे संबन्ध रखनेवाले सभी प्रकार रोगों में छोटे उपवासों से काम लिया जाता है। इनमें न बड़े वासों की आवश्यकता है और न वे किए ही जाने चाहिए।

बड़े उपवास

जो रोग पुराने हो जाते हैं और जिनके विष, रक्त में इस र मिश्रित हो जाते हैं कि उनका जल्दी निकालना किसी र सम्भव नहीं होता, उन रोगों में बड़े उपवास किए जावें और उसी दशा में पूर्ण लाभ होता है।

बड़े उपवास एक सप्ताह से लेकर तीन तीन और चार-चार ह तक के किये जाते हैं। कुछ विशेष रोगों में तो लोगों ने से भी बड़े उपवास किए हैं और उनसे बराबर फायदा उठाया विदेशों में, विशेष रोगों में छः-छः महीने तक के उपवास करने ले लोग मिलते हैं। उनको देखकर यह आशंका दूर होजाती है बिना खाये हुए मनुष्य जल्दी मर सकता है।

नीचे कुछ रोग बताये जाते हैं जो बिना बड़े उपवासों के र रूप से सेहत नहीं होते—

१—बहुमूत्र रोग (Diabetes)

वासों में खाने की मात्रा सम्मिलित रहती है, उनका वर्णन अर्द्धोपवास में कर चुके हैं।

उपवास के दिनों में जिन नियमों का अनुसरण किया जाता है, उन पर भी विस्तार के साथ पहले लिखा जाचुका है। यहाँ संक्षेप में उनकी चर्चा कर देना ही पर्याप्त होगा—

(१) एनीमा—साधारण विकारों में उपवास आरम्भ करके चार दिन तक लगातार एनीमा देना चाहिए। पहले दिन साबुन मिश्रित करके और शेष दिनों में केवल गर्म पानी का प्रयोग करना चाहिए। यदि पहले दिन किसी प्रकार का कष्ट होजाय तो दूसरे दिन एनीमा न देकर तीसरे दिन देना चाहिए।

(२) जल पीना—इस बात को न भूलना चाहिए कि शीतल जल बराबर पीना बहुत लाभदायक है। उपवास के दिनों में नियम बना लेना चाहिए कि आध-आध घण्टे पर एक-एक पाव पानी पिया जाय। यदि सरदी के दिन हों तो एक एक घण्टे के बाद पीना चाहिए।

(३) हिप-बाथ—जितने दिन उपवास रखा जाय, उतने दिन में एक बार या दो बार हिप-बाथ या कटि स्नान अवश्य लेना चाहिए।

(४) स्नान करना—नित्य नियमपूर्वक ठण्ढे जल से खूब स्नान करना चाहिए। यदि गरमी के दिन हों तो सुबह और शाम—दोनों समय स्नान करना चाहिए।

१३—साधारण वीर्य-सम्बन्धी रोग

१४—पसली की पीड़ा

१५—मासिक-धर्म सम्बन्धी रोग

१६—मूत्राशय की बीमारियाँ

१७—बवासीर, गुदा के रोग

इस प्रकार के अथवा इनसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी प्रकार रोगों में छोटे उपवासों से काम लिया जाता है। इनमें न बड़े वासों की आवश्यकता है और न वे किए ही जाने चाहिए।

बड़े उपवास

जो रोग पुराने हो जाते हैं और जिनके विष, रक्त में इस ार मिश्रित हो जाते हैं कि उनका जल्दी निकालना किसी ार सम्भव नहीं होता, उन रोगों में बड़े उपवास किए जाते और उसी दशा में पूर्ण लाभ होता है।

बड़े उपवास एक सप्ताह से लेकर तीन-तीन और चार-चार ाह तक के किये जाते हैं। कुछ विशेष रोगों में तो लोगों ने ससे भी बड़े उपवास किए हैं और उनसे बराबर फायदा उठाया । विदेशों में, विशेष रोगों में चान्द्रा महीने तक के उपवास करने ाले लोग मिलते हैं। उनको देखकर यह आशंका दूर होजाती है कि बिना खाये हुए मनुष्य जल्दी मर सकता है।

नीचे कुछ रोग बताये जाते हैं जो बिना बड़े उपवासों के ्ण रूप से सेहत नहीं होते—

१—बहुमूत्र रोग (Diabetes)

वासों में खाने की मात्रा सम्मिलित रहती है, उनका वर्णन अर्द्धोपवास में कर चुके हैं।

उपवास के दिनों में जिन नियमों का अनुसरण किया जाता है, उन पर भी विस्तार के साथ पहले लिखा जा चुका है। यहाँ संक्षेप में उनकी चर्चा कर देना ही पर्याप्त होगा—

(१) एनीमा—साधारण विचारों में उपवास आरम्भ करके तीन दिनों तक लगातार एनीमा देना चाहिए। पहले दिन साबुन मिश्रित करके और शेष दिनों में केवल गर्म पानी का प्रयोग करना चाहिए। यदि पहले दिन किसी प्रकार का कष्ट होजाय तो दूसरे दिन एनीमा न देकर तीसरे दिन देना चाहिए।

(२) जल पीना—इस बात को न भूलना चाहिए कि शीतल जल बराबर पीना बहुत लाभदायक है। उपवास के दिनों में नियम बना लेना चाहिए कि आधा-आधा घण्टे पर एक-एक पाओ पानी पिया जाय। यदि सर्दी के दिन हों तो एक-एक घण्टे के बाद पीना चाहिए।

(३) टिप-बाथ—जितने दिन उपवास रखा जाय, उतने दिन में एक बार या दो बार हिप-बाथ या कटि स्नान अवश्य लेना चाहिए।

(४) स्नान करना—नित्य नियमपूर्वक ठण्डे जल में खूब स्नान करना चाहिए। यदि गरमी के दिन हों तो सुबह और शाम—दोनों समय स्नान करना चाहिए।

(५) मिट्टी का प्रयोग—बताये हुए नियमों के अनुसार नित्य रात को सोते समय पेड़ू पर मिट्टी बाँधने का प्रयोग करना चाहिए।

(६) दैनिक कार्य—अपने नित्य के जो कार्य होते हैं, उनको बराबर करना चाहिए। यदि चक्कर मालूम हो तो उस दशा में केवल शीतल स्थान में विश्राम करना चाहिए।

(७) व्यायाम करना—जो लोग व्यायाम करते हैं उनको नियमानुसार नित्य व्यायाम करना चाहिए। किन्तु जो लोग व्यायाम नहीं करते, उनके लिए आवश्यक नहीं है।

(८) वायु-सेवन—वायु सेवन के निमित्त प्रातःकाल और सायंकाल एक मील दो मील, तीन मील और चार मील एवं इससे भी अधिक अपनी शक्ति के अनुसार नित्य चलने का काम लेना चाहिए।

(९) विश्राम—उपवास के दिनों में शान्तिपूर्वक विश्राम की बड़ी जरूरत पड़ती है।

(१०) निद्रा—गम्भीर निद्रा का आना अत्यन्त सुखकर और आरोग्यजनक होता है। इसलिए नींद-भर सोने की चेष्टा करनी चाहिए।

(११) स्वच्छ वायु—किसी भी ऋतु में स्वच्छ और ताजी वायु का मिलना बहुत आवश्यक है। सोने का कमरा ऐसा होना चाहिए, जिसमें ताजी वायु के आने का रास्ता हो। सोने के समय खिड़कियाँ कभी बन्द न करनी चाहिए।

उपवास तोड़ने की सूचना देनेवाले लक्षण

उपवास तोडने के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण यह बात है कि जब शरीर निर्विष हो जाय, बस उसी दिन उपवास तोड़ देना चाहिए। इसकी पहचान निम्नलिखित लक्षणों से की जाती है—

१—उपवास आरंभ करने पर जो भूख मालूम होती है, वह सच्ची भूख नहीं होती। यह भूख, आदत की भूख होती है। जब इसको रोक दिया जाता है, तो आरंभ में कष्ट होता है और फिर धीरे-धीरे वह कष्ट कम होता जाता है। उसके बाद तो भूख ऐसी मिट जाती है कि बिल्कुल मालूम ही नहीं पडती। उपवास का यह मध्यकाल होता है। यह मरी हुई भूख तब तक जाग्रत नहीं होती, जब तक शरीर पूर्णरूप से निर्विकार नहीं हो जाता। अतएव उपवास तोड़ने का पहला लक्षण सच्ची भूख का जाग्रत होना है।

२—रोगी और विषैले शरीर की अवस्था में जिह्वा पर मैल की पपडी जम जाती है, यह पपडी तब तक दूर नहीं होती, जब तक शरीर के भीतर से मल और विष दूर नहीं हो जाता। अतएव उपवास तोड़ने का समय, उस समय माना जाता है, जब जिह्वा के ऊपर की तह में जमी हुई मैल की पपडी नष्ट हो जाती है और जिह्वा का रंग लाल वर्ण हो जाता है।

३—मल और विकार पूर्ण मनुष्य के मुख से जो वायु निकलती है, उसमें एक प्रकार की दुर्गन्धि पायी जाती है। यह दुर्गन्धि, शरीर के निर्विकार होने पर दूर हो जाती है। अतएव

(५) मिट्टी का प्रयोग—बताये हुए नियमों के अनुसार नित्य रात को सोते समय पेड़ू पर मिट्टी बाँधने का प्रयोग करना चाहिए।

(६) दैनिक कार्य—अपने नित्य के जो कार्य होते हैं, उनको बराबर करना चाहिए। यदि चक्कर मालूम हो तो उस दशा में केवल शीतल स्थान में विश्राम करना चाहिए।

(७) व्यायाम करना—जो लोग व्यायाम करते हैं उनको नियमानुसार नित्य व्यायाम करना चाहिए। किन्तु जो लोग व्यायाम नहीं करते, उनके लिए आवश्यक नहीं है।

(८) वायु-सेवन—वायु सेवन के निमित्त प्रातःकाल और सायंकाल एक मील, दो मील, तीन मील और चार मील एवं इससे भी अधिक अपनी शक्ति के अनुसार नित्य चलने का काम लेना चाहिए।

(९) विश्राम—उपवास के दिनों में शान्तिपूर्वक विश्राम की बड़ी जरूरत पड़ती है।

(१०) निद्रा—गम्भीर निद्रा का आना अत्यन्त सुखकर और आरोग्यजनक होता है। इसलिए नींद-भर सोने की चेष्टा करनी चाहिए।

(११) स्वच्छ वायु—किसी भी ऋतु में स्वच्छ और ताजी वायु का मिलना बहुत आवश्यक है। सोने का कमरा ऐसा होना चाहिए, जिसमें ताजी वायु के आने का रास्ता हो। सोने के समय खिड़कियाँ कभी बन्द न करनी चाहिए।

उपवास तोड़ने की सूचना देनेवाले लक्षण

उपवास तोडने के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण यह बात है कि जब शरीर निर्विष हो जाय, बस उसी दिन उपवास तोड़ देना चाहिए। इसकी पहचान निम्नलिखित लक्षणों से की जाती है—

१—उपवास आरंभ करने पर जो भूख मालूम होती है, वह सच्ची भूख नहीं होती। यह भूख आदत की भूख होती है। जब इसको रोक लिया जाता है, तो आरंभ में कष्ट होता है और फिर धीरे-धीरे वह कष्ट कम होता जाता है। उसके बाद तो भूख ऐसी मिट जाती है कि बिलकुल मालूम ही नहीं पड़ती। उपवास का यह मध्यकाल होता है। वह मरी हुई भूख तब तक जाग्रत नहीं होती, जब तक शरीर पूर्णरूप से निर्विकार नहीं हो जाता। अतएव उपवास तोडने का पहला लक्षण सच्ची भूख का जाग्रत होना है।

२—रोगी और विषैले शरीर की अवस्था में जिह्वा पर मैल की पपडी जम जाती है, यह पपडी तब तक दूर नहीं होती, जब तक शरीर के भीतर से मल और विष दूर नहीं हो जाता। अतएव उपवास तोडने का समय, उस समय माना जाता है, जब जिह्वा के ऊपर की तह में जमी हुई मैल की पपडी नष्ट हो जाती है और जिह्वा का रंग लाल वर्ण हो जाता है।

३—मल और विकार पूर्ण मनुष्य के मुह से जो वायु निकलती है, उसमें एक प्रकार की दुर्गन्धि पायी जाती है। यह दुर्गन्धि, शरीर के निर्विकार होने पर दूर हो जाती है। अतएव

उपवास तोड़ने का तीसरा लक्षण यह माना जाता है, जब मुँह से निकलने वाली वायु की दुर्गन्धि मिट जाती है।

ऊपर लिखे हुए चार लक्षणों से उपवास तोड़ने का समय निश्चित किया जाता है। इनमें प्रथम और तीसरा लक्षण बहुत स्पष्ट और महत्वपूर्ण माना जाता है। पहला लक्षण कभी-कभी सन्देहात्मक हो जाता है किन्तु अन्य तीसरे लक्षणों में कभी किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता।

यदि उपवास के दिनों में ऊपर लिखे हुए लक्षण प्रतीत होने लगें तो उपवास को आगे चलाने की अपेक्षा तोड़ देना ही अच्छा होता है।

उपवास कैसे तोड़ना चाहिए ?

ऊपर बताये हुए लक्षण प्रतीत होने पर उपवास तोड़ देना चाहिए। इस बात के लिए बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है कि उपवास बहुत ही नियमानुसार तोड़ा जाय। यदि भोजन ज़रा भी नियम-विरुद्ध हो जायगा अथवा आवश्यकता से अधिक मात्रा में लिया जायगा तो उपवास के द्वारा उत्पन्न की हुई शरीर की सम्पूर्ण परिस्थिति उलट जायगी। इसलिए उपवास के बाद भोजन प्रारम्भ करने में बहुत सावधानी की आवश्यकता पड़ती है।

उपवास विशेषज्ञों का कहना है कि उपवास तोड़ने के बाद तरल पदार्थ ही पेट में जाने चाहिए और तरल पदार्थों में खट्टे और मीठे फलों का रस ही सर्वोत्तम है। सन्तरा, नारङ्गी अनन्नास

द जोशी
जन्म 21 मई 1931, उज्जैन (म० प्र०)

इसमें सन्देह नहीं कि उपवास के बाद भूख का रोकना कठिन होता है, किन्तु यदि आरम्भ में भर पेट कुछ भी खा लिया जायगा तो बहुत बड़ा व्यतिक्रम पैदा होजायगा। इसलिए बड़ी सतर्कता से काम लेना चाहिए।

उपवास के बाद पथ्य

एक और दो दिनों का उपवास तो साधारण बात है, किन्तु यदि इसके आगे उपवास किया जाता है तो जितने ही अधिक दिनों का उपवास चलेगा, उतनी ही सावधानी की आवश्यकता होगी। इसलिए यहाँ पर, विशेष सुविधा के लिए, उपवास तोड़ने पर किस प्रकार पथ्य करना चाहिए और कब तक, इसको स्पष्ट करना अधिक आवश्यक है—

३ से लेकर ६ दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन—दो बार से लेकर तीन बार तक सतरा, नारङ्गी टिमाटर और चकोतरा जैसे फलों का रस एक बार में १० तोला तक।

दूसरा दिन—दूसरे दिन पहले दिन का पथ्य और उसके साथ सेव, अनन्नास दिन में तीन बार। एक बार में दो सेव से अधिक नहीं। इसी हिसाब से अनन्नास।

तीसरा दिन—ऊपर लिखे हुए फलों का रस, फल तथा मक्खन निकाला हुआ ताजा मट्ठा। मट्ठा की मात्रा एक बार में पाव भर से अधिक नहीं। सेव और अंगूर।

उपवास तोड़ने का तीसरा लक्षण यह माना जाता है जब मुह में निकलने वाली वायु की दुर्गन्धि मिट जाती है।

ऊपर लिखे हुए तीनों लक्षणों से उपवास तोड़ने का समय निश्चित किया जाता है। इनमें दूसरा और तीसरा लक्षण बहुत स्पष्ट और महत्वपूर्ण माना जाता है। पहला लक्षण कभी-कभी सन्देहात्मक हो जाता है किन्तु दूसरे-तीसरे लक्षण में कभी किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता।

यदि उपवास के दिनों में ऊपर लिखे हुए लक्षण प्रतीत होने लगें तो उपवास को आगे चलाने की अपेक्षा तोड़ देना ही अच्छा होता है।

उपवास कैसे तोड़ना चाहिए?

ऊपर बताए हुए लक्षण प्रतीत होने पर उपवास तोड़ देना चाहिए। इस बात के लिए बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है कि उपवास बहुत ही नियमानुसार तोड़ा जाय। यदि भोजन ज़रा भी नियम-विरुद्ध हो जायगा अथवा आवश्यकता से अधिक मात्रा में लिया जायगा तो उपवास के द्वारा उत्पन्न की हुई शरीर की सम्पूर्ण परिस्थिति उलट जायगी। इसलिए उपवास के बाद भोजन प्रारम्भ करने में बहुत सावधानी की आवश्यकता पड़ती है।

उपवास-विशेषज्ञों का कहना है कि उपवास तोड़ने के बाद तरल पदार्थ ही पेट में जाने चाहिए और तरल पदार्थों में खट्टे और मीठे फलों का रस ही सर्वोत्तम है। सन्तरा, नारङ्गी, अननास

इसमें सन्देह नहीं कि उपवास के बाद भूख का रोकना कठिन होता है, किन्तु यदि आरम्भ में भर पेट कुछ भी खा लिया जायगा तो बहुत बड़ा व्यतिक्रम पैदा होजायगा। इसलिए बड़ी सतर्कता से काम लेना चाहिए।

उपवास के बाद पथ्य

एक और दो दिन का उपवास तो साधारण बात है, किन्तु यदि उसके आगे उपवास किया जाता है तो जितने ही अधिक दिनों का उपवास चलेगा, उतनी ही सावधानी की आवश्यकता होगी। इसलिए यहाँ पर, विशेष सुविधा के लिए, उपवास तोड़ने पर किस प्रकार पथ्य करना चाहिए और कब तक, इसको स्पष्ट करना अधिक आवश्यक है—

३ से लेकर ६ दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन—दो बार से लेकर तीन बार तक सतरा, नारङ्गी टिमाटर और चकोतरा जैसे फलों का रस एक बार में १० तोला तक।

दूसरा दिन—दूसरे दिन पहले दिन का पथ्य और उसके साथ सेव, अनन्नास दिन में तीन बार। एक बार में दो सेव से अधिक नहीं। इसी हिसाब से अनन्नास।

तीसरा दिन—ऊपर लिखे हुए फलों का रस, फल तथा मक्खन निकाला हुआ ताजा मट्ठा। मट्ठा की मात्रा एक बार में पाव भर से अधिक नहीं। सेव और अगूर।

तीन दिन के उपरात—पत्तीवाले शाक, लौकी, मूली और परवल केवल उबाल कर और नमक काली मिर्च मिलाकर। गाय का दूध लिया जासकता है और अन्न ग्रहण किया जासकता है। दूध गर्म किया हुआ हो और चूस-चूस कर पिया जाय।

७ से लेकर १२ दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन—केवल सन्तरा और नारंगी का रस दिन में तीन बार तक। हर बार में एक पाव से लेकर डेढ पाव तक।

दूसरा दिन—सन्तरा, नींबू, चकोतरा, टिमाटर आदि खट्टे और मीठे ताजे फलों का रस दिन में पाँच बार तक। एक बार में आधा पाव से अधिक नहीं।

तीसरा दिन—फलों का रस, शाक-जल। फलों का रस दिन-भर में आधा सेर तक और शाक-जल एक सेर तक। इसके सिवा सेब और अंगूर साधारण मात्रा में।

चौथा दिन—ऊपर के फलों के साथ-साथ शाक-जल दिन में दो सेर तक।

चार दिन के उपरात—फल, फलों के रस, मक्खन निकाला हुआ ताजा मट्ठा और शाक-जल। दो दिनों के बाद गाय या बकरी का गरम किया हुआ दूध। एक पाव से लेकर डेढ पाव तक। उसके बाद जो या गेहूँ के मोटे आटे की रोटी, मूँग की दाल अथवा लौकी पालक या मूली के शाक के साथ। पहले दिन बहुत कम मात्रा में। दूसरे दिन उससे कुछ अधिक, तीसरे दिन उससे भी कुछ अधिक।

मद गति मे रोगी को भोजन की चीजें देने का क्रम रखा जाता है। यदि तीन सप्ताह से अधिक का उपवास करना पड़े तो पहली बात तो यह है कि किसी अनुभवी आदमी की देख रेख अत्यन्त आवश्यक होगी। उसके सिवा, तोड़न पर आरभ म सन्तरे के रस के सिवा और कुछ भी न देना होगा। और वह भी उतनी ही मात्रा मे, जितनी मात्रा एक वर्ष के बालक के लिए आवश्यक होती है। इस मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाना होता है। तीसरे दिन या उसके उपरात शाक-रस दिया जासकता है। किन्तु दिन में पहले दिन तीन पाव से अधिक नहीं और एक बार मे दस तोला से अधिक नहीं।

उपवास तोड़ने पर पहले दिन सन्तरे का रस दिन में तीन छटॉक तक। एक वार म एक छटॉक से अधिक नहीं। दूसरे दिन चार बार में डेढ़ पाव से अधिक नहीं। इसी प्रकार उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। एक सप्ताह तक इतनी सावधानी से इन चीजों की मात्रा बढ़ानी चाहिए, जिससे दी हुई खूराक आवश्यकता से कम ही रहे। लम्बे उपवास के तोड़ने पर पथ्य की असावधानी अत्यन्त हानिकारक होसकती है।

एक सप्ताह के बाद जो के आटे की हल्की रोटी, उबले हुए शाक के साथ थोड़ी मात्रा मे आरम्भ की जासकती है। उसके उपरान्त उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जासकती है। तत्पश्चात् दूध का देना आधा पाव से लेकर शुरू किया जासकता है। यदि दूध देने पर जरा भी अपच मालूम हो तो दूध रोक देना चाहिए।

१२ से लेकर १८ दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन—सन्तरा या नारगी का रस दिन मे तीन बार। दिन भर मे पाव-भर से अधिक नहीं।

दूसरा दिन—सन्तरा, नारगी या टिमाटर का रस दिन
चार चार, कुल डेढ पाव तक।

तीसरा दिन—ऊपर का पथ्य और शाक-जल, फलों का र
आधा सेर तक, शाक-जल एक सेर तक।

चौथा दिन—उपरोक्त पथ्य, शाक-जल डेढ सेर से लेकर द
सेर तक। सेव और अगूर।

पाँचवा दिन—फल, फलों का रस ढाई पाव तक। शाक-जल
दो सेर से लेकर ढाई सेर तक। उबाले हुए शाक। मुलायम और
कच्ची मूली।

छठा दिन—उपरोक्त पथ्य। भूख अधिक मालूम होने प
सवाई मात्रा मे।

छ दिनों के बाद—फल,फलों के रस,शाक-जल,जो की रोटी
उबाली हुई शाक-सब्जी के साथ। गाय या बकरी का गरम किय
हुआ दूध, आरभ मे एक पाव से अधिक नहीं।

१८ दिनों से अधिक उपवास के पथ्य

ऊपर तीन सप्ताह तक के उपवास का पथ्य जो बताया गया है,
उससे इस बात का पता चलता है कि उपवास के बाद कितनी

मन्द गति से रोगी को भोजन की चीजें देने का क्रम रखा जाता है। यदि तीन सप्ताह से अधिक का उपवास करना पड़े तो पहली बात तो यह है कि किसी अनुभवी आदमी की देख रेख अत्यन्त आवश्यक होगी। उसके सिवा, तोड़न पर आरंभ में सन्तरे के रस के सिवा और कुछ भी न देना होगा। और वह भी उतनी ही मात्रा में, जितनी मात्रा एक वर्ष के बालक के लिए आवश्यक होती है। इस मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाना होता है। तीसरे दिन या उसके उपरांत शाक-फल दिया जासकता है। किन्तु दिन में पहले दिन तीन पाव से अधिक नहीं और एक बार में दस तोला से अधिक नहीं।

उपवास तोड़ने पर पहले दिन सन्तरे का रस दिन में तीन छटाँक तक। एक बार में एक छटाँक से अधिक नहीं। दूसरे दिन चार बार में डेढ़ पाव से अधिक नहीं। इसी प्रकार उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। एक सप्ताह तक इतनी सावधानी से इन चीजों की मात्रा बढ़ानी चाहिए, जिससे दी हुई खूराक आवश्यकता से कम ही रहे। लम्बे उपवास के तोड़ने पर पथ्य की असावधानी अत्यन्त हानिकारक होसकती है।

एक सप्ताह के बाद जौ के आटे की हल्की रोटी, उबले हुए शाक के साथ थोड़ी मात्रा में आरम्भ की जासकती है। उसके उपरान्त उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जासकती है। तत्पश्चात् दूध का देना आधा पाव से लेकर शुरू किया जासकता है। यदि दूध देने पर जरा भी अपच मालूम हो तो दूध रोक देना चाहिए।

और यदि अपच न मालूम हो तो धीरे-धीरे उसकी भी मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए।

इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि उपवास तोड़ने पर उपवास काल का कार्यक्रम बन्द होजायगा। किन्तु शीतल जल का पीना और ठण्ढे जल में स्नान करना आदि बराबर जारी रहेगा। उपवास तोड़ने के बाद जो पथ्य आरम्भ होता है, उसमें जो तरकारियाँ बताई गयी हैं, वे केवल उबली हुई होनी चाहिए, तली हुई नहीं। उबालने के साथ-साथ नमक और काली मिर्च के सिवा अन्य मसाला का संयोग न करना चाहिए। पथ्य के दिनों में यदि किसी समय अपच मालूम हो अथवा पेट भारी जान पड़े तो उसके बाद पथ्य की चीजें भी रोक देनी चाहिए और जब पेट साफ़ होजाय तो फिर आरम्भ करना चाहिए।

२६—उपवास के उपरांत स्वास्थ्य

उपवास के पश्चात् शरीर में बड़ी तेजी के साथ स्वास्थ्य और शक्ति निर्माण का कार्य होता है। और थोड़े ही दिनों में इतना अधिक स्वास्थ्य का संचय हो जाता है, जितना कि पहले कभी नहीं रहा। यदि उपवास के उपरान्त संयम-नियम के साथ रहने की चेष्टा की जाय और अपने जीवन को प्रकृति का अनुगामी बनाया जाय तो शरीर का वह सुख प्राप्त होता है, जिसकी कल्पना उसके विरुद्ध जीवन में कभी नहीं की जासकती।

इस बात का सदा स्मरण रखना पड़ेगा कि आवश्यकता से अधिक भोजन और अभोज्य भोजन सदा शरीर को रोगी बनाता है। यदि मनुष्य प्रकृति का अनुसरण करे तो बहुत ही कम उसको शारीरिक कष्ट हो सकता है। इस प्रकार की बातें पुस्तक के आरंभ में विस्तार के साथ बतायी जाचुकी हैं। यहाँ पर अत्यन्त संक्षेप में उन बातों पर प्रकाश डालना है, जिनका अनुसरण और अनुगमन मनुष्य का सदा स्वस्थ रखने में सहायता करता है।

पाचक भोजन—भोजन के पदार्थ सदा ऐसे होने चाहिए जो सरलतापूर्वक पच सकें। साथ ही स्वास्थ्यकर भी हों। गरिष्ठ पदार्थ कभी भी लाभदायक नहीं होते।

बाजारू मिठाइयाँ—इनसे अधिक बढकर हानिकारक शायद ही कोई चीज हासके। इसलिए प्रकृति-अनुगामी मनुष्यों को इन्हें सदा बचाना चाहिए।

सुबह का जलपान—जो लोग सुबह किसी-न-किसी प्रकार की मिठाई के द्वारा जल-पान करते है, वे शरीर को नीरोग नहीं रख सकते। मिठाइयो के स्थान पर यदि प्रात काल स्वच्छ और शुद्ध होकर, ताजे फल खाये जॉय तो अधिक अच्छा होता है।

पानी पीना—मनुष्य को पानी अधिक मात्रा मे पीना चाहिए। शीतल और स्वच्छ जल हमेशा स्वास्थ्यवर्धक होता है। इसके द्वारा मल का नाश होता है और शरीर निर्विकार होता है।

भोजन के साथ जल—खाना खाते हुए पानी पीने का अभ्यास छोड देना चाहिए। इससे पाचन-क्रिया मे बाधा पडती है। जिनको खाने के समय प्यास लगती ही है, उनको अपनी आदत छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए और भोजन करने के पूर्व थोड़ा-सा ठढा जल पी लेना चाहिए।

कौर को ठीक-ठीक चबाना—भोजन करने में जल्दी न करना चाहिए। जो चीज खाई जाय, उसको अच्छी प्रकार दातों से चबा-चबाकर बारीक करना चाहिए और उसको निगलने की कोशिश करने के बजाय अपने आप पेट के भीतर जाने देना चाहिए।

अपच होने पर—जब कभी पेट मे अपच मालूम हो, तो उसके बाद एक आध बार का भोजन, अवश्य रोक देना चाहिए।

इन सब बातों के साथ-साथ नित्य नियम पूर्वक स्वच्छ और शीतल वायु का सेवन, आवश्यकतानुसार व्यायाम, उचित मात्रा में नित्य विश्राम और गम्भीर निद्रा मनुष्य को सदा नीरोग रखती है। इस प्रकार के प्राकृतिक नियमों का अनुसरण करके मनुष्य स्वास्थ्य-सौन्दर्य और दीर्घ जीवन प्राप्त करता है।

समाप्त